योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक: योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 57 : अंक : 03
जून 2024

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई – 283203 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.06.2024

मूल्य – एक प्रति : 25/–,

अमृतकण

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।

जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है वह संन्यासी तथा योगी है, और केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है।

◆ ◆ ◆

यं सन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसन्न्यस्त संकल्पो योगी भवति कश्चन ।।

हे अर्जुन ! जिसको सन्यास ऐसा कहते हैं उसी को तू योग जान । क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला कोई भी पुरुष नहीं होता।

◆ ◆ ◆

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिये योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है। और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष का जो सर्व संकल्पों का अभाव है वही कल्याण में हेतु कहा जाता है।

◆ ◆ ◆

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।।

जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है उस काल में सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

◆ ◆ ◆

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

अपने द्वारा आपना संसार समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धन्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख्य में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरुप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 57 जून 2024 अंक : 03

अचार्यवान्हि पुरूषो वेदेत्यादि श्रुतिर्जगौ
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन गुरूमाहात्म्यं वद प्रभो

श्रुति इस प्रकार कहती है कि आचार्यवान् पुरुष ही परमात्मा को जानता है इसलिये हे प्रभो ! सर्व प्रयत्न से गुरू के माहात्म्य को कहिये।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual Values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक- दिनेश चन्द्र शर्मा, डॉ. विजय सिंह

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख- योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी — 03
2. सम्पादकीय — 08
3. श्रीमद् भागवत में योग परिचर्या – डॉ. विजय सिंह — 10
4. श्री हनुमान के सीता शोध का आध्यात्मिक रहस्य – डॉ. श्री श्यामाकान्त जी द्विवेदी- — 13
5. ध्यानज् चित्त की विशेषता- श्री पं. हीरालाल शास्त्री — 23
6. वैराग्य – स्वामी जी अनन्त श्री चिदानन्द जी सरस्वती महाराज — 26
7. गौ की महिमा – कृष्ण कुमार पाण्डेय — 30
8. वेदों एवं उपनिषदों में योगचर्या – श्री केशव उपाध्याय — 32
9. आश्रम के आगामी कार्यक्रम — 36

एक प्रति	: रु. 25.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1500.00

हमारा विशेष लेख :—

योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी
का
काय निर्माण
(योग—योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

श्री पातंजल योग दर्शन मे योगी की शक्ति का वर्णन करते हुए श्री पतंजलि जी ने निम्नांकित सूत्र का उल्लेख किया है—

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः।

(समाधिपाद, सूत्र 40)

अर्थात् एकाग्रचित्त वाले योगी की शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि उसका चित्त परमाणु से लेकर आकाश पर्यन्त अधिकार प्राप्त कर लेता है। इस सूत्र पर व्यास—भाष्य की पंक्तियां इस प्रकार पढ़िये—

"सूक्ष्मे निविशमानस्य परमाण्वन्तं स्थिति पदं लभत इति, स्थूले निविशमानस्य परममहत्त्वान्तं स्थिति पदं चित्तस्य एवं तामुभयीं कोटिमनुधावतो योऽयाप्रतिघातः स परो वशीकारः, तद्वशीकारात्परिपूर्णं योगिनश्चित्तं न पुनराभ्यासकृतं परिकर्मापेक्षत इति ।। 40 ।।

अर्थात जिस समय योगी अपने संयम के आधार पर सूक्ष्म तत्वों को जानने की इच्छा करता है, उस समय परमाणु पर्यन्त योगी का चित्त संयम से पहुँच जाता है और जिस समय स्थूल तत्व में संयम करता है तो आकाश आदि पर जय करके मूल प्रकृति पर्यन्त वशीकार प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से योगी का चित्त बिना किसी रुकावट के संकल्प मात्र से सूक्ष्म और महान से महान में स्थिति को पा जाता है तो उसकी वशीकार संज्ञा हो जाती है। उसको फिर अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं रहती। संकल्प मात्र से जहां भी संयम करता है, वहीं ही उसका अधिकार हो जाया करता है। इस प्रकार संयम के आधार पर वह योगी पंच महाभूतों के ग्रहण, सूक्ष्म आदि रूपों पर अधिकार पा जाया करते हैं। वह भूतजयी योगी अपने शरीर में जैसा भी परिणामान्तर करना चाहते हैं, वैसा ही हुआ करता है। हमारे आज इस लेख का विषय है— "योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी का काय-निर्माण।" "श्री प्रभुजी के चरणारविन्द के विषय में 'साधारण सिद्ध—योगी' कहना उचित नहीं है। उनके चरणारविन्दानुरागी साधुओं ने पूरा अन्वेषण कर इस बात को भी प्रकार से जान लिया है कि श्री प्रभुजी तत्त्वविजयी अनादिकाल श्रेणी वाले महासिद्धों में से एक हैं। उन्होंने अपने में संस्कार रखने वाले अनेकों प्राणियों के संस्कार निवृत्ति के लिये कितने ही स्थानों पर निर्माण—तन धारण किये। सर्वसाधारण के ज्ञान के लिये श्री प्रभुजी के कुछ चरित्र इस लेख में हम यहाँ उदाहरण रूप से दिखला रहे हैं।

एक बार श्री प्रभुजी के सवाई ग्राम में निवास—काल की एक घटना है जो वहाँ के निवासियों ने अपनी आँखों देखी थी। श्री प्रभुजी सवाई ग्राम में निवास कर रहे थे तब श्री प्रभुजी

सवांई आश्रम में रहते हुए बच्चों को खेल खिलाया करते थे। एक दिन अकस्मात् एक घटना घटी जिससे यह पूर्णरूपेण प्रमाणित हो जाता है कि श्री प्रभुजी एक साथ तीन जगह निर्माणित शरीर से प्रगट हुए।

गढ़मुक्तेश्वर में काय–निर्माण

एक दिन सवांई ग्राम के बहुत से व्यक्ति गंगास्नानार्थ गढ़मुक्तेश्वर गये। पर्व का मौका था। गंगास्नानार्थ जाने वाले लोगों ने श्री प्रभुजी से यह प्रार्थना की, कि प्रभो ! आप हमारे साथ गंगा स्नान के लिये चलिए किन्तु श्री प्रभुजी ने कुछ अनमने भाव से कहा के भाई हम जाकर क्या करेंगे ? तुम लोग स्नान कर आओ। मन से हम हर सूय तुम्हारे साथ हैं। गाँव के लोग इस बात को मान गये और गंगा–स्नान के लिये गढ़मुक्तेश्वर को चले गये। वहाँ पहुँचने पर जब वे लोग स्नान करने के लिये घाट पर गये तो उन लोगों ने देखा कि श्री प्रभुजी उनके साथ आ रहे हैं। लोगों ने कहा कि प्रभो ! आप आ गये। श्री प्रभुजी ने कहा कि तुम सब लोगों की भावना थी, सो हम आ गये। लोगों ने कहा कि प्रभो ! आपने यह बहुत अच्छा किया जो आप आ गये। हम लोगों की तीव्र भावना थी कि इस परम पवित्र पर्व पर आप हम लोगों के साथ होते। आपके बिना हम तो अपने स्नान को बिल्कुल बेकार समझते थे। इस प्रकार का वार्तालाप करते हुए श्री प्रभुजी वहाँ कुछ दूर तक उनके साथ चले और उसके बाद उन लोगों से कहा कि भाई ! तुम लोग चलो, अब हम आ जायेंगे।

अलीगढ़ में भक्त–रक्षा हित काय–निर्माण

जिस दिन गढ़मुक्तेश्वर में यह घटना घटी, ठीक उसी दिन अलीगढ़ में इसी प्रकार की घटना घटी। ठाकुर कर्णसिंह श्री प्रभुजी के अनन्य भक्तों में से एक थे। वह उन्ही के चिंतन में प्रतिक्षण लीन रहा करते थे। वे अकस्मात् चलते–चलते चिंतनलीन होने से उनका पैर रपटा और गहरे गड्ढे में पड़ने की स्थिति पैदा हो गयी। ठा० कर्णसिंह ने देखा कि श्री प्रभुजी पीछे खड़े हैं और उनके कन्धों को पकड़कर कह रहे हैं कि अरे ! कर्णसिंह होश सम्हाल कर चल नीचे कितना गहरा गड्ढा है। अभी तू इसमें गिर जाता तो प्राण रक्षा कठिन हो जाती। यह कहकर वे कुछ दूर तक उनके साथ चले। उसके बाद अन्तर्धान हो गये। उधर सवांई सिद्धगुफा पर जैसे के तैसे बने ही रहे। उधर से गढ़मुक्तेश्वर वाले लोग और कर्णसिंह सवांई पहुँचे तो वहाँ पर श्री प्रभुजी पहले से ही विराजमान थे ही। इन लोगों ने आकर के कहा कि प्रभो ! इतनी जल्दी आकर के आप हम लोगों से पहले कैसे आ गये ? तो श्री प्रभुजी ने कहा कि हम तो यहाँ से गये ही नहीं, तुम्हें कोई दूसरा महात्मा मिल गया होगा। सभी को बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ और सभी लोग समझ गये कि श्री प्रभुजी ने यह कार्य हम सबके हितार्थ, नव शरीर धारण करके किया।

मद्रास प्राप्त के प्रमुख शहर मछलीपट्टम में काय–निर्माण

मछलीपट्टम शहर से थोड़ी दूर पर गोदावरी नदी के उत्तरी तट पर सघन छायायुक्त एक वृक्ष खड़ा था। उसके नीचे वनीय स्थान में भिन्न–भिन्न स्थानों से साधु लोग आ करके अपना अभ्यास किया करते थे। उन सम में एक साधक विषयोग का अभ्यासी था, वह संखिये की एक डेली पर सलाई से रेखा खींच कर चाट–चाटकर अपना अभ्यास बढ़ा रहे थे, उसका अभ्यास बहुत ही शनैः–शनैः बढ़ रहा था। परम करुणार्णव श्री प्रभुजी वहाँ पर काय–निर्माण से प्रकट हुए और उस

साधक को आश्वासन देते हुए कहा कि लाओ तुम्हारे इस अभ्यास को हम बढ़वा दें। यह कहकर श्री प्रभुजी ने एक संखिये की डेली उठाई और उसे खाने को दे दिया। श्री प्रभुजी के साधुस्वरूप को देखकर उसने उन पर विश्वास किया और डेली खा ली, वह उसे पच भी गई। उस विषयोगी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि यह कौन से महापुरुष हैं और कहाँ से आते हैं ? श्री प्रभुजी ने उसे आज्ञा दी कि हम सप्ताह में एक बार यहीं वट–वृक्ष के नीचे मिल जाया करेंगे और तुम्हारे विषयोग का अभ्यास अवश्य–अवश्य पूर्ण करा देंगे। अपने कथनानुसार श्री प्रभुजी प्रति सप्ताह गोदावरी तट पर उसको विषयोग का अभ्यास कराते रहे। श्री प्रभुजी के दर्शन से उसको तरह–तरह के चमत्कार होते रहे और समाधि का अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

एक रोज उसने श्रीप्रभुजी से हठ करके प्रार्थनापूर्वक पूछा कि प्रभो ! आपकी कृपा से मुझे अद्भुत सफलता प्राप्त होती जा रही है। कृपा करके आप अपना परिचय कराईये कि आप कौन है और कहाँ से आया करते हैं ? श्री प्रभुजी ने उनको बार–बार समझाया। भाई, हमारे परिचय से तुम्हें क्या लाभ होगा ? हम साधु हैं, रमते राम हैं, आज यहाँ है तो कल वहाँ हैं। यह हठ तुम हमसे मत करो, किन्तु फिर भी वह साधक बार–बार हठ करता ही रहा। उसके हठ के परिणामस्वरूप श्री प्रभुजी ने अपना परिचय दे ही दिया और कहा नाम "राम योगी" है। जन्मभूमि पंजाब है। पंजाब में हमारे शिष्य बहुत से हैं, जिनमें से मुलखराज, गोपालानन्द, चन्द्रमोहन, नृसिंहादि प्रमुख हैं। उन सबको छोड़ करके हम चले आये हैं। वे लोग हमारे सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं। अब आज से छः महीने बाद रायमहेन्द्रगढ़ शहर में योग प्रचार करता हुआ ओरुगण्टी नृसिंह मूर्ति तुम्हें मिलेगा, वह हमारा बच्चा है, शेष काम तुम्हें वह करायेगा। श्री प्रभुजी के कथनानुसार ठीक छः महीने बाद रायमहेन्द्रगढ़ में योग प्रचार करते हुए श्री नृसिंहमूर्ति जी उसे मिले। उसने श्री प्रभुजी की सारी बातें बतायीं। अपने अनुरूप शिक्षा पाकर वह विषयोग का अभ्यासी चला गया। यह था श्री प्रभुजी का काय–निर्माण। एक जगह नहीं, उन्होंने अनेकों जगह निर्माण–तनों से अपने भक्तों की रक्षा की।

पंडित यशवन्त को काय–निर्माण से दर्शन

अमृतसर में पंडित यशवन्त शर्मा दुर्ग्याना महिन्दर के सामने लोहे के फाटक से बाहर माई धनवन्ती की धर्मशाला के सामने धूप और अगरबत्ती की दुकार करते हैं। ये बाल्यावस्था में कुछ समय के लिये आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की सेवा में रहे थे। आयु बहुत छोटी थी। प्रभुजी से कई बार प्रार्थना की कि प्रभुजी, आप हमारा घर देखने के लिये चलें। श्री प्रभुजी साधारण भाव से कहते रहे, बेटा शान्ति रख, किसी दिन चलेंगे। एक दिन इस बालक ने बहुत हठ किया तो प्रभुजी ने कहा– अच्छा तू चल, मकान खोल, हम आते हैं। बालक यशवन्त ने प्रभुजी की आज्ञा मानकर तांगा मँगवा दिया और स्वयं दस कदम आगे चल कर अपने मकान को खोला तो दरवाजे के खोलते ही देखा कि वहाँ पर एक पलंग पर प्रभुजी पहले से ही विराजमान हैं। इस दृश्य को देखकर आश्चर्य में पड़ गया और हाथ जोड़कर यह प्राथना की कि प्रभु जी ! आप मुझसे भी पहले यहाँ कैसे पहुँच गये और मकान का ताला बन्द होने पर अन्दर प्रवेश कैसे किया ? ताला तो मैंने ही खोला है। श्री प्रभुजी मुस्कराने लगे। बेटा ! हम तुम्हारे साथ ही तो आये हैं। इतनी देर में देखा कि जो तांगा यशवन्त ने प्रभुजी के लिये किया था, उसमें बैठकर आ रहे हैं। यह और भी बड़े भारी आश्चर्य की बात थी। यशवन्त हैरान रह गया। उधर देखा श्री प्रभुजी तांगे में बैठ हुए हैं और इधर देखा पलंग पर भी बैठे हुए हैं, किन्तु कौन से स्वरूप को सत्य माने। श्री प्रभुजी के स्वरूप से ही प्रार्थना की कि प्रभुजी

तांगे में भी आप हैं और मकान में पलंग पर भी आप बैठे हैं। आपके किस स्वरूप को सत्य मानें। प्रभुजी हँस पड़े और हँसकर कहने लगे– बेटा ! हम तो तुम्हारे साथ ही हैं और कहीं थोड़ी ही हैं। यह कहकर बालक यशवन्त को लेकर अपने स्थान पर चले आये।

श्री नारायणदास जी को खेचरी का उपदेश

पं0 नारायणदास जो अमृतसर के रहने वाले थे, उनको श्री प्रभुजी ने खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने की आज्ञा दी थी। वह शनैः–शनैः दोहन, चालन, छेदन के द्वारा खेचरी का अभ्यास कर रहे थे। किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी वे इस मुद्रा की साधना में सफलता नहीं प्राप्त कर सके। पं0 नारायणदास स्वाध्यायशील व्यक्ति थे। स्वाध्यायशील व्यक्ति के स्वाध्याय का यह प्रभाव होता है कि ऋषि, मुनि, देवता और सिद्ध लोग एवं परमतत्व श्री गुरुदेव उसको दर्शन दिया करते हैं और अपनी शक्ति से उसकी मनोकामना पूर्ण किया करते हैं। घटना उसी प्रकार से हुई, नारायणदास खेचरी के लिये निरन्तर परेशान थे और मन में बहुत अधिक निराशा भी। वह सोचते थे, यदि खेचरत्व लाभ नहीं होता तो मनुष्य शरीर को धारण करना व्यर्थ है। इस घोर निराशा के समय क्या देखते हैं कि श्री प्रभुजी सामने से आते हैं और कहते हैं कि बेटा ! नारायणदास, तुम निराश क्यों हो रहे हो। लो तुम्हें हम एक मन्त्र बतलाते हैं, इसके जपने से तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। श्री प्रभुजी ने उसके पास रहकर के मन्त्र जपाया और स्वयं उसकी जीभ को पकड़कर आगे को खींच दिया और मुद्रा लगाने की विधि को समझा दिया। उसी दिन से पं0 नारायणदास की समाधि लगने लगी। वे इस मुद्रा को पाकर कृतार्थ हो गये। पं0 नारायणदास को खेचरी मुद्रा का श्री प्रभुजी ने निर्माण–काय से उपदेश दिया था।

गुरु के बटाले में काय–निर्माण

अमृतसर में जगन्नाथ नाम के एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे बड़े अच्छे कर्मकाण्डी थे, स्वाध्यायशील एवं सदाचारी थे। किन्तु श्री प्रभुजी के लीला चरित्रों में वे विश्वास नहीं करते थे। वह समझते थे यह सब बनावट है। यह अपने आपको सिद्ध योगीराज साबित कर रहे हैं। यथार्थतः ऐसा नहीं है। यही विचार इसके मन में घूमते रहते थे। एक रोज अकस्मात् एक घटना घटी। वह अमृतसर से 8 मील दूरी पर गुरु का बटाला नामक एक गाँव है, किसी कार्यवश वहाँ गये हुए थे। घूमते–घुमाते एक बगीचे में पहुँचे, वहीं जाकर देखा कि एक सुहावने वृक्ष के नीचे आसन डालकर प्रभुजी बैठे हुए थे। मालूम पड़ता था वह कहीं से चलकर आये हुए हैं और आगे कहीं जाना चाहते हैं। पं0 जगन्नाथ ने प्रभुजी को पहचान लिया और पहचान कर कहा– सुनाईये महाराज ! आप यहाँ अकेले कैसे बैठे हुए हैं। आपके साथ हजारों स्त्री–पुरुषों की भीड़ हमेशा रहा करती है। आज आपको अकेला देख कर मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यह कैसे ? प्रभुजी ने उत्तर दिया– भाई ! हम सब झमेले को छोड़ आये हैं एवं अब यहाँ से हम नेपाल धाम को लौट रहे हैं। इस प्रकार से वहाँ पर कई घण्टे तक जगन्नाथ बात करते रहे। उसके बाद प्रभुजी से विदाई लेकर के अमृतसर चले आये। जिस समय जगन्नाथ अमृतसर आने लगे तो पं0 जगन्नाथ से कहा कि भाई ! फलाँ–फलाँ कोठी पर जाकर हमारे बच्चों से कहना कि वे चिंता न करें। हम दोबारा मिलेंगे। पं0 जगन्नाथ ने स्वीकार किया और अमृतसर आकर के कोठी में सभी सत्संगी भाईयों को सन्देश देने के लिये आया, वहाँ आकर देखा कि सभी सत्संगी जोर से संकीर्तन कर रहे हैं और देहावसान के समय कई घण्टे पहले जो शरीर छोड़ दिया था उसको सम्हाले हुए हैं। पं0 जगन्नाथ को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और सभी से कहा

कि भाई ! मै तो इनको साधारण मनुष्य ही समझता था किन्तु बडे ही आश्चर्य की बात है कि यहाँ पर यह शरीर मृत अवस्था मे छूटा पड़ा है और मैं अभी–अभी आधा घण्टा पहले गुरु के बटाले में लगभग 4 घण्टे तक मिला रहा, बातचीत को विश्राम किया। अन्त में प्रभुज से विदाई लेकर आया तो यहाँ पर यह दृश्य देखा। इसमें कुछ भी शंका की बात नहीं है कि महाराज जो, परिपूर्णतम् योगी राज है उनके लिए मरना जीना शरीर का छोड़ना और न छोड़ना दोनों ही समान है।

गुरू के बटाले का यह कार्य प्रभुजी का निर्माण काय का कार्य था। यहां तक लिखे आजकल भी उनकी इस प्रकार की हजारों घटनायें घटित होती रहती है। वह अपने बालकों के लिए हजारों शरीर को धारण करके विविध प्रकार के कार्य किया करते है। अभी कुछ वर्ष पहले हमने कितने ही शिष्यों के साथ नेपाल धाम की यात्रा की हम लोग पशुपति नाथ के साथ वाली धर्मशाला के ऊपर वाले कमरे में ठहरे थे। वहाँ पर अकस्मात् एक साधु आया। और उसने बातचीत करते हुए हमें बतलाया कि उसको अभी कुछ दिन पहले दरभंगा के जंगलों में प्रभुजी के दर्शन प्राप्त हुए हैं और उसने उन्हीं से योग–दीक्षा प्राप्त की है। और कतने ही दिन तक चरण सेवा में रहत रहा। उसने बतलाया कि प्रभुजी ने आज्ञा दी है कि मैं यहां आकर आपके दर्शन प्राप्त करूँ और प्रसाद लूं। अन्ततः वह विभूति का प्रसाद लेकर वहाँ से तत्काल चला गया। प्रसाद कर चले जाने के बाद पुनः उस साधु के दर्शन नहीं हुए।

इस छोटे से लेख में अनेक रूप धारण करने वाले प्रभु जी की अनन्त लीलाओं का कहाँ तक वर्णन करूँ। अपने बालकों के हितार्थ वे कब–कब और कितने शरीर धारण करते हैं, यह सब कथन से बाहर है।

श्री रामनवमी प्रभु जी के प्रकट होने का दिन है। रामनवमी के अवसर पर ही 'सिद्ध–योग' का नये वर्ष का विशेषांक निकलता रहा है। हम प्रति वर्ष चाहते रहते हैं कि इस अंक में उनके लीला चरित्रों का ही अधिक वर्णन आये। इसी भावना को विचार में रखते हुए हमने प्रभु जी के काय–निर्माण को लक्ष्य बना कर यह कुछ पंक्तियां लिखी है, जिनको पढ़कर के प्रत्येक साधक भली प्रकार से यह समझ सकेगा कि उन परात्पर प्रभुजी के कितने अद्‌भुत कार्य हैं और अपने बालकों के हितार्थ क्या नहीं करते हैं ? अर्थात् सभी कुछ किया करते हैं। प्रभु जी के चरणों से बार–बार आशीर्वाद है–

सर्वे भवन्तु सुखिन,
सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद् दुखः भागभवेत्।।

सगुण और निर्गुण उपासना में श्रेष्ठ और सरल कौन ?

(सम्पादकीय)

हमारे भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही उपासना की पद्धति में दो मार्ग प्रचलित हैं, उनमें एक है सगुण और दूसरा निर्गुण। सगुण मार्ग उन लोगों का मार्ग है जो मानते हैं कि भगवान भक्तों के कष्ट निवारण एवं सन्मार्ग देने के लिये समय–समय पर देह धारण करते रहते हैं। इस विषय में भगवान श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं–

अजोऽपि सन्नव्यायात्मा भूतानीश्वरोऽपि सन्
प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

अर्थात् मैं अविनाशी सब प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति का सहारा लेकर अपनी माया से देह धारण करके आता हूँ। अगले श्लोक में इसके तीन कारण भी बता दिये हैं जिनमें पहला है सज्जन व साधु पुरुषों का परित्राण करना साथ ही दुष्टों का विनाश करना तथा धर्म की संस्थापना करना। सगुण और निर्गुण को साकार व निराकार भी कहते हैं। निराकार की व्युत्पत्ति करते हुए परम पूज्य रामानुजाचार्य सन्त रामभद्राचार्य जी कहते हैं–

"निर्गताः आकाराः यस्मात् इति निराकारः।

अर्थात् जिस परमतत्व से आकार निर्गत होते हैं, प्रकट होते हैं वही निराकार है। सरल शब्दों में कहें तो निराकार से ही समय–समय पर साकार का प्रदुर्भाव होता है। इस प्रकार से अपनी निश्ठा के अनुसार दो प्रकार के साधक हुए निराकार को मानने वाले तथा साकार को मानने वाले। अब प्रश्न यह है कि इन दोनों मार्गों में से सरल और श्रेष्ठ कौन सा मार्ग है ? इस प्रश्न का उत्तर भगवान ने गीता के बारहवें अध्याय में स्पष्ट रूप से दे दिया है। इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन प्रश्न करते हैं कि जो साधक श्रद्धा से परिपूरित आपके सगुण रूप की उपासना करते हैं वे श्रेष्ठयोगी हैं या आपके निर्गुण तत्व की उपासना करने वाले श्रेष्ठ हैं। इसका उत्तर देते हुए भगवान कहते हैं, अर्जुन ! जो अपने मन को मुझ वासुदेव में लगाकर अत्यन्त श्रद्धा से नित्य मुझसे जुड़े रहते हैं वे साधक मेरे मत में युक्तमय अर्थात् श्रेष्ठयोगी हैं। निराकार उपासकों के विषय में बताते हुए वे कहते हैं जो उस अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, अचिन्त्य, कूटस्थ एवं अचल ब्रह्म की उपासना करते हैं वे भी अन्ततोगत्वा मुझे ही प्राप्त करते हैं। किन्तु अव्यक्त के इन उपासकों का मार्ग कष्ट साध्य है क्योंकि देहधारी देहाभिमानी अव्यक्त की उपासना सहज रूप से नहीं कर पाते जबकि सगुण उपासक जो सम्पूर्ण कर्मों को मुझे अर्पण करके अनन्य योग से ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन्हें मैं मृत्युरूप संसार सागर से जल्दी ही पार कर देता हूँ। इसलिए अर्जुज ! तू अपने मन का ध्यान योग द्वारा मुझमें आयान कर और अपनी बुद्धि को भी मुझमें निवेशित कर, समाहित कर, ऐसा करने से तू मुझमें ही रहने लगेगा। अर्थात् एकरूपता को प्राप्त कर लेगा, इसमें कोई संशय की बात नहीं है।

निर्गुण की उपासना में साधक के सामने कोई नाम या रूप नहीं होता। निर्गुण अचिन्त्य भी है, इसका मन से मनन भी नहीं हो सकता। मनन उसी वस्तु का हो सकता है जिसको देखा

हो या सुना हो, चिन्तन योग्य हो। निर्गुण के लिये उपनिषद कहते हैं–

"यन्मनसा न मनुते ये ना हुर्मनो मतम्"

अर्थात् जिसका मन से मनन नहीं किया जा सकता अपितु जिसकी कृपा से मन मनन करने वाला होता है वह ब्रह्म ही है जो नाम रूप से रहित है। इस विषय में श्री रामचरित मानस के बाल काण्ड में शिव पार्वती के संवाद में भगवान शिव कहते हैं–

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा, गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई, भगत प्रेमवश सगुन सो होई।

अर्थात् निर्गुण, सगुण में कोई भेद नहीं है। मुनि पुराण वेद और बुध जन ऐसा कहते हैं जो ईश्वर अगुन, अरूप, अलख, अजंन्मा है वह भगतजन के प्रेमवश होकर सगुण में आकर मानवदेह में आ जाते हैं। भगवान शिव भगवती पार्वती को इस तत्व को समझाते हुए आगे कहते है कि गुणरहित सगुण कैसे हो जाता है। कहते है कि–

"जो गुण रहित सगुण सोई कैसे, जलहिम उपल विलय जैसे।"

जो निर्गुण है वह सगुण कैसे ? उदाहरण दिया है– जलहिम उपल विलय जैसे। जैसे जल और ओला या बर्फ में भेद नहीं है दोनों जल ही है ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही है। योग सगुण से निर्गुण की यात्रा है।

योग साधना में योगी प्रथम सगुण का ही ध्यान करता है। योग स्थूल से सूक्ष्म में जाने का विज्ञान है। समाधि के क्रम में प्रथम स्थूल विषय में समाधि वितर्कानुगत समाधि कहलाती है। फिर आगे विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत में प्रवेश पाकर योगी सूक्ष्म से कारण तथा कारण से भी परे विशुद्धतत्व में लीन रहकर आत्मानन्द का अनुभव करता हुआ निर्वीज समाधि तक पहुंचता है। योगी का यही लक्ष्य होता है।

।। ॐ श्री रामलालप्रभवे नमः।।

प्रेषक– डॉ0 विजय सिंह

श्रीमद्भागवत में योग परिचर्चा

बारहवें स्कन्ध के सातवें अध्याय में सूत जी ने अथर्ववेद की शाखाये और पुराणों के लक्षण के बारें में ऋषियों को बताया है। सूत जी कहते हैं– ऋषियों ! अथर्ववेद के ज्ञाता सुमन्तमुनि थे। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य कबन्ध को अपनी संहिता पढ़ायी। कबन्ध ने उस संहिता के दो भाग करके पथ्य और वेददर्श को अध्ययन कराया। इसी प्रकार ये लोग अपने योग्य शिष्यों को अध्ययन कराते रहे। अब मैं पौराणिकों के बारे में बताता हूँ।

शौनक जी ! पुराणों के छः आचार्य प्रसिद्ध है। त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारित। इन लोगों ने मेरे पिता लोमहर्षण जी से तथा पिता जी भगवान व्यासदेव जी से अध्ययन किये थे।

पुराणों के दस लक्षण है। विश्वसर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, प्रलय, हेतु और अपाश्रय। अब इनका विस्तार बताता हूँ। जब मूल प्रकृति में लीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब महतत्त्व की उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्व से तामस, राजस, और सात्विक तीन प्रकार के अहंकार बनते हैं। इन्हीं अहंकारों से पंचतन्मात्रा, इन्द्रिय और विषयों की उत्पत्ति होती है। इसी का नाम विश्वसर्ग है। पूर्वकर्मो के अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओं की प्रधानता से जो यह चराचर शरीरधारी जीव की सृष्टि होती है। इसे विसर्ग कहते है।

चर प्राणियों का जीवन–निर्वाह वृत्ति अचर–पदार्थ से होती है। भगवान युग–युग में पशु–पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता के रुप में अवतार ग्रहण करके अनेकों लीलायें करते हैं। ये अवतार विश्व की रक्षा के लिये ही होते है। इसलिए इसे नाम 'रक्षा' दिया गया है। मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार से युक्त समय को 'मन्वन्तर' कहते हैं। राजाओं के तथा उनके वंशधरों के चरित्र का नाम वंश एवं वंशानुचरित कहा गया है। ब्रह्माण्ड का प्रलय–नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य, अत्यन्तिक तत्वज्ञों ने इसे प्रलय कहा है। जीव ही सर्ग–विसर्ग का हेतु है जो अविद्यावश कर्मकलाप मे उलझा रहता है। जीव की वृत्तियों के तीन विभाग है– जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति। इन अवस्थाओं के अभिमानी, विश्व, तैजस और प्राज्ञ मायामय रुपों में प्रतीत होता है। इन अवस्थाओं से परे तुरीयतत्त्व के रुप मे लक्षित होता है, वही ब्रह्म है उसी को 'अपश्रय' कहा गया है।

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्रिशु।
मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः।।

(19–07–12)

जब चित्त स्वयं आत्मविचार अथवा योगाभ्यास के द्वारा सत्त्वगुण–रजोगुण–तमोगुण के व्यवहारिक वृत्तियों और जाग्रत–स्वप्न आदि स्वभाविक वृत्तियों ,का त्याग करके उपराम हो जाता है, तब शान्तवृत्ति में 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के द्वारा आत्मज्ञान का उदय होता है। तब वह आत्मवेत्ता पुरुष अविद्या जनित कर्म–वासना और कर्मप्रवृत्ति से निवृत्त हो जाता है।

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम्।
योगेन वा तदाऽऽत्मानं वेदेहाया निवर्तते।।

(21–07–12)

शौनकादि ऋषियों ! अठारह पुराण हैं। इनके नाम हैं– 1. ब्रह्मपुराण 2. पद्मपुराण 3. विष्णुपुराण 4. शिवपुराण 5. लिंग पुराण 6. गरुणपुरण 7. नारद पुराण 8. भागवत पुराण 9. अग्निपुराण 10. स्कन्दपुरण 11. भविष्यपुराण 12. वामन पुराण 13. ब्रह्मावैवर्तपुराण 14. मार्कण्डेय पुराण 15. वाराह पुराण 16. मत्स्य पुराण 17. कूर्मपुराण 18. ब्रह्माण्ड पुराण। पढ़ने और मनन करने से ब्रह्मतेज की अभिवृद्धि होती है।

बारहवें स्कन्ध के आठवें अध्याय में ऋषि मार्कण्डेयजी की तपस्या और वर–प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

शौनक जी ने कहा– सूतजी ! जो लोग संसार के अपार अंधकार में भटक रहे हैं उन्हें आप वहाँ से निकालकर प्रकाशस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार करा देते हैं। कृपया मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिये। प्रलय ने सारे जगत को जब निगल लिया था तब मार्कण्डेय ऋषि उस समय भी बचे रहे। इस कुल्प में अब तक प्रणियों का कोई प्रलय नहीं हुआ है। हमारे मन में बड़ा सन्देह है। आप बड़े योगी है, पौराणिकों में श्रेष्ठ हैं। आप कृपा कर हमारे सन्देह का निवारण कर दीजिये।

एष नः संशयो भूयान् सूत कौतूहलं यतः।
तं नश्छिन्धि महायोगिन् पुराणेष्वपि सम्मतः।।

(5.8.12.)

सूत जी ने कहा– शौनक जी ! आपने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया है। इस कथा में भगवान् नारायण की महिमा है। मार्कण्डेय जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा था। वे शान्त भाव से रहते थे। काले मृग का चर्म, रुद्राक्षमाला और कुश, यही उनकी पूँजी थी। वे सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत, सूर्योपस्थान, गुरूवन्दन, मानस पूजा और "मैं परमात्मा का स्वरूप ही हूँ" इस धारणा के द्वारा भगवान की आराधना करते थे। सायं–प्रातः भिक्षा लाकर गुरुदेव के चरणों में निवेदन कर देते और मौन हो जाते। गुरुजी की आज्ञा होती तो एक बार खा लेते अन्यथा उपवास कर जाते। मार्कण्डेय जी ने इस प्रकार तपस्या और स्वाध्याय में तत्पर रहकर करोड़ों वर्षों तक आराधना की और मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर ली, जिसको जीतना बड़े–बड़े योगियों के लिये भी कठिन है। आजीवन ब्रह्मचर्य–व्रतधारी एवं योगी मार्कण्डेय जी तपस्या, स्वाध्याय और संयम आदि के द्वारा अविद्या आदि सारे क्लेशों को मिटाकर शुद्ध अन्तःकरण से इन्द्रियातीत परमात्मा का ध्यान करने लगे।

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपस्स्वाध्यायसंयमैः।
इध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना।।

(3.8.12)

योगी मार्कण्डेय जी महायोग के द्वारा अपना चित्त भगवान के स्वरूप में जोड़ते रहे। ऐसा करने छः मन्वन्तर व्यतीत हो गया।

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेयोगिनः।
व्यतीयाय महान् कालो मन्वन्तरषडात्मकः।।

(14.8.12.)

सातवें मन्वन्तर का इन्द्र उनकी तपस्या से शक्ति और भयभीत होकर विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया। तपस्या में विघ्न डालने हेतु उनके आश्रम पर गन्धर्व, अप्सरायें, काम, वसन्त, मलयानिल, लोभ और मद को भेजा। सभी ने अपनी माया फैलायी। उस समय मार्कण्डेय जी ध्यानस्थ थे। वे मूर्तिमान अग्नि के सामन तेजस्वी थे। कामदेव ने शेषण, दीपन, सम्मोहन, तापन और उन्मादनरूपी वाण उन पर चलाये। अप्सराओं ने कामोदीपन हेतु कामक्रीड़ा रची। परन्तु मार्कण्डेय जी पर उनका सारा उद्यम निष्फल हो गया वे सभी हतप्रभ हो वहाँ से भगकर इन्द्र को सभी समाचार सुनाया। मार्कण्डेय जी के मन में तनिक भी अहंकार का भाव न जगा। अब उन पर अनुग्रह करने के लिये भगवान नर और नारायण प्रकट हुए। उनके शरीर से चमकती हुई बिजली के समान पीले–पीले रंग की कान्ति निकल रही थी। उन्हें देख मार्कण्डेय जी ने आदर सहित दण्डवत् प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने दोनों को आसन पर बैठाया और विधिवत् पूजा किया। मार्कण्डेय जी ने भगवान नर–नारायण के चरणों में प्रणाम किया और स्तुति की।

प्रभो ! आप चराचर का पालन और नियमन करने वाले हैं। मैं आपके चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ। जो इन चरणों की शरण ग्रहण कर लेते हैं, उन्हें कर्म, गुण और कालजनित क्लेश छू नहीं सकते। वेद के मर्मज्ञ ऋषि–मुनि आपकी प्रप्ति हेतु निरन्तर आपका ध्यान किया करते हैं।

प्रभो ! आप समस्त जीवों के परम गुरु, सबके श्रेष्ठ और सत्य ज्ञानस्वरूप हैं। मैं देह–गेह का त्याक कर अपके चरणकमलों की ही शरण करता हूँ। क्योंकि सारे अभिष्ट पदार्थ आपकी शरण ग्रहण से प्राप्त हो जाते हैं। भगवन् ! आप अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, जगद्गुरु परमाराध्य, और शुद्ध स्वरूप हैं। समस्त लौकिक और वैदिक वाणी आपके अधीन है। आप वेद मार्ग के प्रवर्तक हैं। मैं आप दोनों को नमस्कार करता हूँ।

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूमे
विश्वास विश्वगुरव परदेवतायै।
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय
हंसाय संयतगिरे निगवेश्वराय।।

(47.8.12)

प्रभो ! यद्यपि आप प्रत्येक जीव की इन्द्रियों तथा उनके विषयों में, प्राणों में, तथा हृदय में विराजमान हैं फिर भी आपकी माया से जीव की बुद्धि इतनी मोहित है कि वह आपकी झाँकी से वंचित रहता है। सारे जगत के गुरु तो आप ही हैं। आपकी कृपा से जब अज्ञान नष्ट हो जाता है तब ही वह आपके साक्षात् दर्शन कर पाता है। हे विशुद्ध विज्ञानधन, हे पुरुषोत्तम ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः
सन्तं स्वखेष्वसुषु हृद्यपित दृक्पथेषु।
तन्माययाऽऽवृतमतिः स उ एव साक्षा–
दाद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम्।।

(48.8.12)

श्री हनुमान के सीता शोध का
आध्यात्मिक रहस्य
(डा0 श्री श्यामाकान्त जी द्विवेदी, 'आनन्द')

प्रस्तुत लेख में डॉ0 श्यामाकान्त द्विवेदी जी ने रामचरित मानस के विभिन्न पात्रों को आध्यात्म यात्रा के मार्ग में आने वाली भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का समन्वय स्थापित किया है। सुप्त कुण्डलिनी को ही सीता माता का रूप मानकर इनके जागरण द्वारा ही शान्तिरूप कैवल्य की प्रप्ति के मार्ग का शोध किया है। लेख मनन योग्य है। साधकों को सावधान होकर पढ़ना चाहिए।

(सम्पादक)

आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा में हनुमान और सीता का रहस्यार्थ पौराणिक उपाख्यान के वाच्यार्थ से पूर्णतया भिन्न है। हनुमान अन्तर्यात्रा के एक यात्री हैं और सीताजी उस यात्रा का अन्तिम लक्ष्य। यदि हनुमान जी 'साधक' हैं तो सीताजी 'साध्य'। यदि हनुमान 'योगी' हैं तो सीता योगी का लक्ष्य 'योग' हैं। अन्तर्पथ के यात्री हनुमान का पाथेय ज्ञान है। हनुमान वैराग्य हैं। ज्ञान का पाथेय लेकर वैराग्य द्वारा शान्ति–शोध में प्रवृत्त होना ही हनुमान द्वारा सीता–शोध किया जाना है।

'वैराग्य' के बिना कर्म, ज्ञान एवं उपासना तीनों अपूर्ण हैं। वैराग्य ही कर्म को भक्ति के पास, भक्ति को ज्ञान के पास एवं ज्ञान को शान्ति के पास पहुँचाता है। हनुमान वैराग्य साधना के प्रतीक हैं एवं वैराग्य स्वरूप हैं–

'प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय,
विषम–वन भवनमिव धूमकेतू।'

(विनय पत्रिका 58/8)

'जयति धर्मार्थ कामापवर्गदविभो,
ब्रह्मलोकादि–वैभव–विरागी।'

(विनय पत्रिका 29/2)

'वैराग्य' क्या है ? महर्षि पतंजलि वैराग्य की मीमांसा करते हुए कहते हैं–

'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य,
वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।'

(योगदर्शन 1/15)

दृष्ट एवं आनुश्रविक भोगों से वितृष्ण चित्तपूर्ण वशीकरण किया जाना ही वैराग्य है। 'ज्ञान की चरम सीमा ही 'वैराग्य' है।–

'ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्।'

(योगभाष्य 1/16)

इसके ठीक पश्चात ही कैवल्य की सम्प्राप्ति होती है–

'एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति।'

(योगभाष्य 1/16)

श्री हनुमान जी की परम विरागी होने के कारण ही 'ज्ञानिनाग्रगण्यम कहा गया है, क्योंकि ज्ञान की पराकाष्ठा 'वैराग्य' है। महर्षि पतंजलि कहते है कि–

'तत्परं पुरुषख्यातेर्गुण–वैतृष्णम्।

(योग0 1/16)

प्रकृति पुरुषान्यताख्याति से गुण–वैतृष्ण्य का आविर्भाव होना ही 'पर वैराग्य' है।"

योगियों का परम प्राप्तव्य 'योग' है। इस योग की प्राप्ति के दो साधन हैं (1) अभ्यास और (2) वैराग्य। अभ्यास और वैराग्य से चित्तवृत्ति–निरोध की प्राप्ति होती है–

अभ्यासवैराग्याभ्यांतन्निरोधः'

(यो0 सू0 1/12)

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'

(यो0 सू0 1/2)

योग का मूल वैराग्य है। वैराग्य ही योग का परम साधन है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में जिन्हें ब्रह्म से एकीभाव प्राप्त करने का अधिकारी बताया है, उनमें वैराग्य सम्पन्न व्यक्ति की भी गणना की है–

'ध्यानयोगपरानित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।'

(18/52)

वैराग्य का लक्ष्य शान्ति है। उसका मार्ग ज्ञान है। उसका कर्त्तव्य–कर्म शोध है। समस्त प्राणियों का एकमात्र लक्ष्य 'शान्ति' है। श्री रामोपाख्यान में सीता ही शान्ति है। जहाँ शान्ति होगी, वहीं पूर्णता होगी और जहाँ पूर्णता होगी, वहीं एकरस, अखण्ड एवं शाश्वतिक आनन्द होगा। अतः शान्ति समस्त प्राणियों का नैसर्गिक एवं प्रतिक्षण–प्रवृत्त व्यापार है, क्योंकि उसके बिना सुख कहाँ **नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।**

न चाभावयतः शातिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।

(गीता 2/66)

शान्ति रूपिणी सीता जब जनकपुरी में महाराज जनक के यहाँ अवतरित हुई, तब उनके प्राप्त्यर्थ श्री राम को अनामन्त्रित होने पर भी पद यात्रा करनी पडी। उन्हें अपनी शान्ति–स्वरूपा सीता के लिए 'भव–चाप' तोड़ना पड़ा–

'भंजेउ राम आपु भव चापू।।'

भव–चाप को तोड़े बिना ब्रह्म को भी शान्ति नहीं मिली। भव–समुद्र को लाँघे बिना हनुमान को भी सीता रूपी शान्ति नही मिली।

प्रवृत्ति मार्ग स्वरूप लंका में मोह रूपी राजा रावण राज्य किया करता है। वही शान्ति का अपरहण करने वाला है। समस्त संसार मोह–निशा में सोता है, किन्तु योगी इसमें भी जागता रहता

है और अपनी अन्तर्यात्रा में प्रवृत्त रहता है।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच वियोगी।।

(मानस 2/92/1–1/2)

या निशा सर्व भूतानां,
तस्या जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि,
सा निशा पश्यतो मुनेः।।

(गीता 2/69)

श्री हनुमान सीता–शोध के लिये इसी निशा में यात्रा करते हैं, क्योंकि योगी के लिये संसार की रात्रि ही दिन है एवं संसार का दिन ही रात्रि।

योगी की यात्रा गोपनीय होती है, क्योंकि वह वैराग्य स्वरूप होने के कारण आत्मविज्ञान नहीं करना चाहता, करण, यह योग–मार्ग के लिये प्रत्यूह है। इसीलिये हनुमान जी रात्रि में यात्रा करते हैं–

'अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।'

हनुमान जी का सीता–शोध हेतु रात्रि में यात्रा करना, साधक के लिये अन्तर्साधना को पूर्णतया गोपनीय रखना एवं 'जग–जामिनी' में सदा जाग्रत रहने का संकेत है। तुलसीदास जी भी यही संकेत करते हैं–

लागु, जागु, जीव जड़ ! जो है जामिनी।
देह, गेह, नेह जानि जैसे घन–दामिनी।।

(विनय पत्रिका 73/1)

एहिं जग–जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच वियोगी।।
जानिय तबहिं जीव जग जागा।
जब सब विषय विलास विरागा।।

(मानस 2/92/2)

प्राकृत पुरुषों की बात कौन कहे, स्वतः ब्रह्म श्री राम को भी अपहृत शान्ति–सीता के लिये विरह–विदग्ध स्वर में विलाप करना पड़ा– 'हा गुनखानि जानकी सीता।' इत्यादि।

ज्ञानियों में अग्रणी एवं सर्वोच्च योगी महाराजा जनक को शान्ति के शोध के लिये क्लिष्ट–कर्म (हल–चालन) करना पड़ा। शान्ति राज–शोध में नहीं मिली, अतः घर के बाहरी क्षेत्र (खेत) में उन्हें हल चलाना पड़ा। भूतत्त्व (मूलाधारचक्र) में स्थित सुषुप्ता कुण्डलिनी का जागरण करना ही भूखण्ड में हल चलाना है। जनक द्वारा हल चलाया जाना इसी मूलाधार चक्र–वेधन का

संकेत है। महाराज जनक ने हल–क्रिया से सीता की– शान्ति–रूपिणी सीता की पुत्री रूप में प्राप्ति की। जीव बिना ब्रह्म के रह सकता है किन्तु बिना शान्ति के नहीं। कौशल्या ने कहा है–

जौं सिय भवन रहैं कह अम्बा।

मोहि कहँ होइ बहुत अवलम्बा।।

(मानस 2/59/3–1/2)

इसी प्रकार राजा दशरथ ने भी कहा है–

एहि बिधि करेहु उपाय कदम्बा।

फिरइ त होइ प्रान अवलम्बा।।

(मानस 2/81/3)

बिना शान्ति सीता के महाराज दशरथ का मर्मन्तक मरण हुआ। जिस देश, समाज एवं राष्ट्र की शान्ति नष्ट हो जाये, भला वह कब तक जीवित रह सकता है ?

ब्रह्म का परम भक्त कौन ? जो शान्ति का शोधक हो। शान्ति का शोधक कौन ? शक्तिमान हनुमान। हनुमान महान योगी है। योगी का कर्म मिलाना है।

सीता और श्रीराम को किसने मिलाया ? सुग्रीव और श्रीराम को किसने मिलाया ? विभीषण और श्रीराम को किसने मिलाया ? लक्ष्मण को जीवन–दान देकर श्रीराम से किसने मिलाया ? विरह–वारिधि में डूबते हुए भरत को श्रीराम से किसने मिलाया ?

–इन सभी को मिलाया योगीराज हनुमान ने।

योगी संसारार्णव का अतिक्रमण करके ही कैवल्यस्वरूप लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। इसी प्रकार श्री हनुमान सीता–शोध हेतु समुद्र का अतिक्रमण करते हैं। प्रत्येक साधक को शान्ति प्राप्त्यर्थ सर्व प्रथम भव–सिन्धु का संतरण करना पड़ता है, अन्यथा वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। श्री हनुमान का समुद्रोल्लंघन इसी आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा का प्रतीक है। संसार–सिन्धु का संतरण करने वाला ही श्रीराम का कार्य पूर्ण कर सकता है–

जो नाघइ सत जोजन सागर।

करइ सो राम काज मति आगर।।

राम काज लगि तव अवतारा।

सुनतहि भयहु पर्वताकारा।।

राम काजु कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम।।

विभीषण का श्रीराम से तभी मिलन हो पाता है, जब वे भव–सिन्धु को पार करते हैं–

एहि विधि करत सप्रेम विचारा।

आयत सपदि सिन्धु एहि पारा।।

अध्यात्म–जगत् की कोई भी अर्न्यात्रा हो, किन्तु भगवान् को आगे किये बिना उसमें सफलता नहीं मिल पाती। इसीलिए सागर–संतरण के पूर्व श्री हनुमान श्री रघुनाथ जी को याद करते हैं–

यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा।
चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा।।
बार, बार रघुवीर सँभारी।
तरकेउ पवन तनय बल भारी।।

सीताजी भी हनुमान को इसी के अनुकूल आदेश देती हैं–

रघुपति चरन हृदयँ धरि,
तात मधुर फल खाहु।

केवल वैराग्य के द्वारा ही सीता–शोध सम्भव हो पाया। बिना नेत्र के किसी भी वस्तु के दर्शन नहीं हो पाते। ज्ञान एवं वैराग्य ही दो नेत्र हैं, अतः वैराग्य के द्वारा ही सीता का शोध हो पाया–

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ज्ञान विराग नयन उरगारी।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी।
पाव भगति मनि सब सुख खानी।।

(मानस 7/114/7)

परमशान्ति रूप पद के प्राप्त्यर्थ ही ये दो नेत्र हैं– (1) ज्ञान और (2) वैराग्य। शान्ति की गवेषणा के तीन मार्ग है– (1) राग, (2) विराग और (3) अनुराग। (1) राग है– मोहजन्य आशक्ति, (2) विराग है– अनाशक्ति और (3) अनुराग है– परमात्म–प्रेम। (1) शान्ति की प्राप्ति के लिये रावण की अनुसंधित्सा का मार्ग है– रागमार्ग। (2) शान्ति की प्राप्ति के लिये श्री हनुमान की अनुसंधित्सा का मार्ग है– विराग मार्ग। जब सीता जी श्रीराम को एवं पार्वती जी श्री शिव को चाहती हैं तो वे अनुराग–मार्ग का आत्मीकरण करती हैं–

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा।
निज अनुरूप सुभग बरु मांगा।।
सतीं मरत हरि जन बरु मांगा।
जनम जनम सिव पद अनुरागा।।

शान्ति–प्राप्ति के फल भी भिन्न–भिन्न हैं– (1) शान्ति प्राप्ति से जनक को प्रकाश–प्राप्ति, (2) शान्ति–प्राप्ति से श्रीराम को विकास–प्राप्ति और (3) शान्ति–प्राप्ति से रावण को विनाश–प्राप्ति।

शान्ति के अनुसंधित्सु रावण का विनाश क्यों ? यह इसलिए के वह शांति का पुजारी नहीं, प्रत्युत उसका अपहर्ता है। वह जनकपुर में उसी शान्ति के प्राप्त्यर्थ शास्त्रविहित विधि से प्रयास करने पर पराजित होता है, अतः उसका बलात् अपहरण रता है। शान्ति–प्राप्ति का उसका मार्ग छल–छद्मपूर्ण है–

होहु कपट मृग तुम्ह सुखकारी।
जेहि विधि हनि आनौ नृपकारी।।

शोध का यह मार्ग शास्त्रसंगत नहीं है–

यः शास्त्रविधि मुत्सृज्य,
वर्त्तते काम कारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति,
न सुखं न परां गतिम्।

(गीता 16 / 29)

इसीलिए भगवान् श्रीराम कहते हैं–

निर्मल मन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

शान्ति की प्राप्ति–हेतु कपट एवं बलात् अपहरण पराया होने का दुष्परिणाम ही है– रावण का सर्वनाश। रावण की दृष्टि में शान्ति पूज्या नहीं, भोग्या है। इसीलिए उसका विनाश होता है।

साधक भी आध्यात्मिक सिद्धि को भोग्या नहीं, पूज्या मानकर ग्रहण करें, अन्यथा सिद्धि विलोप एवं साधक का विनाश निश्चित ही है।

शान्ति अपहरण का विषय नहीं, साधना का विषय है। परमात्मशून्य जड़–समाधि में भी शान्ति की प्राप्ति होती है, किन्तु वह शांति देखने में शांति होते हुए भी वस्तुतः अशांतिमय रहती है। सीता श्रीराम की शांति हैं–

भट अम नियम सैल रजधानी।
भान्ति सुमति सुचि सुन्दर रानी।।

वे अशोक के नीचे बैठी रहने पर भी सशोक इसीलिए हैं, क्योंकि उनके सामने आत्मस्वरूप श्रीराम नहीं हैं। वे कहती हैं–

'सुनहिं बिनय मम बिटप असोका।
सत्य नाम करु हरु मम सोका।।'

यह इसी रहस्य का उद्घाटन है कि परमात्मशून्य जड़–समाधि में शान्ति प्राप्त होने पर भी साधक शोक से मुक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक साधना में परमात्मा की पुरस्सरता अपरिहार्य है–

'शान्ति' ज्ञान–वैराग्य की जननी है। परा–भक्ति ही शान्ति है और यही सीता है। भक्ति कहती है–

अहं भक्तिरिति ख्याता
इमौ मे तनयौ मतौ।
ज्ञानवैराग्य नामानौ
कालयोगेन जर्जरौ।।

(पादीय श्रीमद्भागवतमा० 1 / 45)

यदि भगवती भक्ति (शान्ति–सीता) के ज्ञान एवं वैराग्य पुत्र हैं, तब तो हनुमान ज्ञान–वैराग्य दोनों ही होने के कारण शान्तिस्वरूपा भक्तिस्वरूपा सीताजी के साक्षात् पुत्र हैं, क्योंकि उनके विषय में स्पष्टतः कहा गया है–

(1) प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यानघन। और (2) प्रबल वैराग्य दारुण

प्रभंजनतनय। इसीलिए तो श्री सीताजी हनुमान जी को 'पुत्र' कहकर सम्बोधित करती हैं–

'अजर अमर गुन निधि सुत होहू।'

और हनुमान जी भी सीताजी को 'माता' कहकर सम्बोधित करते हैं–

'राम दूत मैं मातु जानकी।'

साधक को शान्ति की प्राप्ति के लिये वैराग्य का मार्ग ग्रहण करते हुए मातृ भावना से अग्रसर होना चाहिए। तभी वियुक्ताकुला को वियुक्त आकुल के साथ सामरस्य कराने में– वियुक्ता शान्तिस्वरूपा सीता के वियुक्त परब्रह्म श्रीराम से मिलाने में साधक को साफल्य मिल सकता है, अन्यथा नहीं। यही है उपर्युक्त कथांश का रहस्य।

विरागी साधक की परीक्षा की कसौटी उसका गुणातीत होना है। परब्रह्म स्वयं गुणातीत है 'गुनातीत सचराचर स्वामी' इसीलिए उसके साधक को भी गुणातीत होना चाहिए–

'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।'

(गीता 2/45)

हनुमान गुणातीत हैं। अतः गुणसंकुल पदार्थों से विरक्त है। यही कारण है कि जब सीताजी यह वरदान देती हैं–

'आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना।

होहु तात बल सील निधाना।।

'अजर अमर गुन निधि सुत होहू।'

तब हनुमान को कोई प्रसन्नता नहीं होती। किन्तु जब वे यह वरदान देती हैं–

'करहुँ बहुत रघुनायक कोहू।'

'करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।

निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

तब वे हर्षमग्न हो उठते हैं।

ठीक भी है, यथार्थ साधक की कसौटी उसकी ऐहिक सिद्धियाँ नहीं हैं, उसकी अनुसंधित्सा है–भगवत्कृपा। उसकी सिद्धि की कसौटी है–भगवत्प्रेम की प्रगाढ़ता।

परम शान्ति का शोध एवं उसकी प्रत्यभिज्ञा केवल वैराग्य ही कर पाता है। शक्ति एवं शक्तिमान के वियोग को संयोग में परिवर्तित करने वाला एकमात्र साधन है– भगवत्प्रेम पुरस्सर वैराग्य। शक्तिमान् परब्रह्म (श्रीराम) अपनी वियुक्ता शक्ति (सीता) कर शोध के लिये केवल वैराग्य (हनुमान) को दूत बनाकर भेजते हैं। ब्रह्म अपनी वियुक्ता शक्ति के (सम्मिलन के) आश्वासनार्थ एवं वैराग्य पर विश्वास करने के लिये अपनी मुद्रिका केवल वैराग्य को ही देते हैं। स्पष्ट है कि वैराग्य को भी बिना भगवत्कृपा के शान्ति प्राप्त हो पाना सम्भव नहीं। यदि शान्ति प्राप्त भी हो जाय तो शान्ति को वैराग्य पर विश्वास नहीं होगा। वैराग्य तभी तक अपने उद्यमों में सक्षम है, जब तक ब्रह्म साधक को अपनी कृपारूपिणी प्रत्यभिज्ञा (मुद्रिका) प्रदान नहीं कर देता। अन्यथा शान्ति का साक्षात्कार हो जाने पर भी साधक को शान्ति, अशांति दिखाई पड़ती है और शांति साधक के विरुद्ध

कुशंकायें करने के कारण उस पर शिवास नहीं करती। मुद्रिका–प्राप्ति की साधक और साध्य के यथार्थ साक्षात्कार का वास्तविक माध्यम है।

साधन–मार्ग में मन का त्याग होना प्रथम संविदा है। हनुमान का अर्थ है–'जिसका मान नष्ट हो चुका हो।' आत्माभिमान साधना जगत् का दारुण प्रत्यूह है। यही कारण है कि हनुमान बार–बार लघु रूप धारण करते हैं–

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
अति लघु रूप धरौं निसि,
नगर करौं पइसार।।
अति लघुरूप धरेउ हनुमाना।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
यमक समान रूप कपि धरी।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।

शान्ति की गवेषणा के प्रकारान्तर से तीन मार्ग और हैं–(1) कर्म–मार्ग, (2) भक्ति–मार्ग और (3) ज्ञान–मार्ग। वैराग्य ज्ञान–मार्ग से गवेषण करता है, अतः हनुमान जी आकाश मार्ग से यात्रा करते हैं। ज्ञान निरालम्ब है और आकाश भी निरालम्ब है। अतः आकाश मार्ग 'ज्ञान–मार्ग' का प्रतीत है। समुद्र–सतरण के बिना लक्ष्य–प्राप्ति असम्भव है।

जो लाँघई सत जोजन सागर।
करइ सो रामकाजि मति आगर।।

साधक के लिये राम–काज क्या है ? शान्ति सीता का शोध।

आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा के मार्ग में अनेक बाधायें आती हैं। श्री हनुमान की यात्रा में आपने वाले प्रत्यूह ही उन बाधाओं के प्रतीक हैं। ये बाधायें हैं–(1) सत्वगुणी माया की बाधा–सुरसा, (2) रजोगुणी माया की बाधा–लंकिनी और (3) तमोगुणी माया की गाधा–सिंहिका। ये तीनों नारियां ही त्रिगुणात्मिका माया के तीन रूप हैं। हनुमान जी को सीता–शोध में तीनों बाधायें नारी के द्वारा हुईं। अतः साधक को मायारूपी नारी से सदैव सावधान रहना चाहिए। हनुमान जी ने सुरसा को प्रणाम करके अपनी रक्षा की, रजोगुणी लंकिनी को अर्धमृता करके छोड़ दिया तथा तमोगुणी सिंहिका का प्राणान्त कर दिया। इसी प्रकार साधक को तीनों गुणों का यथोचित उपयोग करना चाहिए, तभी वह प्रत्यूहों के पार जाकर अपनी रक्षा कर पाता है।

हनुमान जी ने लंका मे पहुँचने पर सीता की खोज करने के निमित्त कनक–भवन का शोध किया। कनक–भवन का त्याग करने के बाद भी कनक–मृग पर मुग्ध सीताजी कनक–नगरी लंका में बंदिनी बन गई। इसी लिए हनुमान जी ने उन्हें कनक–भवन में खोजा। उन्होंने विचार किया कि सीताजी को कनक में शान्ति थी। अतः वे शान्ति को कनक भवन में खोजने लगे, कनक–नगरी में सीता (शान्ति) नहीं मिलीं। वस्तुतः स्वर्ण में शान्ति नहीं, वहाँ शान्ति की भ्रान्ति मस्त है। यदि स्वर्ण

में शान्ति होती तो स्वर्णपुर के स्वर्ण शोध के स्वामी राक्षक राजा रावण को लंका में ही शान्ति मिल गई होती, किन्तु उसे शान्ति नहीं मिली। हनुमान जी ने कनक–नगरी स्थित कनक–भवन के प्रत्ये खण्ड में सीता का शोध किया–

मंदिर–मंदिर प्रतिकर सोधा।
किन्तु मंदिर महुँन दीख वैदेही।।

हनुमान जी ने सोचा कि यहाँ तो सब 'सोने' वाले हैं, अतः किसी जागने वाले से सीताजी का पता पूछना चाहिए–

मन महुँ तरक करैं कपि लागा।
तेहीं समय विभीषनु जागा।।
राम–राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।

शान्ति की प्राप्ति की युक्ति किसी भगवद्भक्त के पास ही होती है, अतः शान्ति शोधक वैराग्य (हनुमान) को उसे पाने की युक्ति मिल गई–

जुगुत बिभीषन सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत विदा कराई।
करु सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ।
वन अशोक सीता रह जहवाँ।।

उस अशोक–वन में आकर हनुमान जी ने देखा कि 'सीता बैठि सोत रत अहई।'– उस अशोक–वन में भी सीता अ–शोक नहीं, स–शोक हैं।

सुनहि विनय मम बिटप असोका,
सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
कपि करि हृदयँ
दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार
दीन्हि हरषि उठि कर गहेउ।।

अशोक ने वस्तुतः ऐसा अंगार गिरा दिया, जिसमें जानकी जी का समस्त शोक जलकर भस्म हो गया। जानकी जी ने कहा था–'हे अशोक ! मेरे शोक को हर कर अपने नाम को सत्य करो।' अशोक ने अपना सत्य कर दिया–

तब देखी मुद्रिका मनोहर।
राम–नाम अंकित अति सुन्दर।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी।
हरष विषाद हृदयँ अकुलानी।।

राम–नाम अंकित मुद्रिका पाकर परम अशान्त सीता को परम शान्ति मिली–

रामचन्द गुन बरनै लागा।
सुनतहि सीता कर दुख भागा।।

क्षण स्थाइ राग–शून्यता वैराग्य नहीं है। वैराग्य तो वह है, जो कभी भी जरा–जर्जर न हो, शिथिल न हो, अपितु अमर रहे, सर्वत्र सर्वदा तरुण रहे। सीता रुपा शान्ति ने हनुमान रूप वैराग्य से कहा–

अजर अमर गुन निधि सुत होहू,
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना,
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

यह निर्भर प्रेम ही तो परम शान्ति है–

निर्भरानन्द–संदोह कपि–केसरी,
केसरी–सुवन भुवनैक भर्त्ता।

सुन्दर काण्ड के आरम्भ के मंगलाचरण में ही श्री गोस्वामी जी ने लिखा है– 'शान्तम्', 'शाश्वतम्' और 'शान्तिप्रदम्', पर शान्त वही होगा, जिसे शान्ति मिली होगी। इस काण्ड में (1) शान्ति–सीता का साचार पाकर अशान्त श्रीराम को शान्ति मिली, (2) समुद्रतट पर बैठी हुई मरणासन्न वानरी–सेना को शान्ति मिली, (3) हनुमान जी को तो साक्षात् शान्ति देवी से वरदान पाकर परमशान्ति मिली और (4) वैराग्य पुत्र के द्वारा श्रीराम–नाम तथा श्रीराम–कथा और 'श्रीराम–नाम अंकित अति सुन्दर' मुद्रिका पाकर शान्ति देवी को महाशान्ति मिली। अतः इस काण्ड का प्रथम मंगलाचरण 'शान्तम्' एवं 'शान्तिप्रदम्'– के शोध से आरम्भ होता है–

शान्तं शाश्वतमप्रेयमनघंनिर्वाण शान्तिप्रदम्।

ध्यानज् चित्त की विशेषता

(श्री पं0 हीरालाल शास्त्री, फर्रुखाबाद)

महाराज पतंजलि ने 'तत्र ध्यानजमनाशयम्' कहकर ध्यान की विशेषता बतलाई है।

योग सूत्र-- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि यह आठ अंग कहे हैं, इन अंगों में ध्यान का विवेचन पढ़िये और अंगों का विवेचन पहले भी कर चुका हूँ बल्कि कुछ न कुछ आठों अंगों में प्रकाश डाल चुका हूँ योग साधक बन्धुओं ने सभी पढ़े और देखे होंगे। अब इस समय ध्यान के विषय की विशेषताएँ आपकी सेवा में लिखी जाती हैं। अनाशयम् का अर्थ--कर्म संस्कारों से रहित होना ही ग्रन्थकार को अभीष्ट है क्योंकि जब कर्म संस्कार मनुष्य में अवशेष रहते हैं तब कर्मों का भोग भोगने के लिये जन्म अवश्य ही कर्मानुसार किसी न किसी योनि में लेना ही पड़ेगा। शास्त्रों की वाणी भी है--

अवश्यमेव भोक्तव्यं,
कृतं कर्मशुभाशुभम्।
कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनाम्
नास्त्रिविधमितरेषाम्।।

--योगदर्शन

अर्थात् योगियों के कर्म अशुक्लाकृष्ण होते हैं। जिनमें न पुण्य हो न पाप हो अतः उनका फल सुखादि न होना या मुक्ति पाना है।

त्रिविधमितरेषाम्

और जो प्राणी योगी नहीं होते हैं उनके कर्म तीन प्रकार के शुक्ल (पुण्य) कृष्ण (पाप) शुक्ल कृष्ण मिश्रित जिनका फल भी मिश्रित ही होता है। योग में यही विशेषता है कि जब उसके पुण्य पाप कुछ भी नहीं होंगे कर्म मोक्ष प्राप्ति का बाधक हो ही नहीं सकता। अन्यथा पुण्य कर्म में सुख भोगने के लिये जन्म लेना अनिवार्य है तथा पाप में दुख भोगने के लिये संसार में आना ही पड़ेगा। इसी प्रकार पुण्य पाप मिश्रित में मनुष्य आदि योनि ग्रहण करना आवश्यक होता है। इसी आधार पर महाराज योगी श्री पतंजलि जी ने स्पष्ट कर दिया है कि--

"तत्र ध्यानजमनाशयम्"

इसी आशय से महाराज पतंजलि जी ने कहा है उन तीन प्रकार के कर्मों का भोग भोगने के लिये वासनायें होती हैं--

ततस्तद्विपाकानु गुणाना
मेवा भिव्यक्तिर्वासनानाम्।

अर्थात् उन कर्मों के फल भोगानुकूल ही वासनाओं की उत्पत्ति हो जाती है यह ईश्वरीय नियम है। जिन सज्जनों ने योग साधन द्वारा प्रारब्ध क्षय नहीं कर पाया है उन पुरुषों के कर्म उनके अन्तःकरण में जमा रहते हैं उनमें से जो कर्म भोग के लिये उन्मुख होता है उस समय कर्म का जैसा

फल आवश्यक होता है, तदनुसार वासनायें उत्पन्न हो जाती हैं अन्य कर्मों की नहीं होती वह उसके अनुसार समय आने पर होती हैं।

इसी कारण भगवान ने गीता में कहा है कि शास्त्र के अनुसार मनुष्य को चलना चाहिए–

यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य
वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति
न सुखं न परांगतिम्।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते
कार्याकार्य व्यवस्थितौ।।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं
कर्म कर्तुमिहाहर्सि।।

शास्त्रानुसार सांसारिक जीवन यापन करने वालों का वर्तमान और भविष्य दो जीवन तो बन ही जाता है। इसी कष्ट को न भोगने के लिये संसार के आवागमन से बचने के लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में मोक्ष की विशेषता मानी गई है। यही आशय महाराज पतंजति का है उसके लिये ही ध्यान की विशेषता बतलाई गई क्योंकि जब मन में कर्म संस्कार ही नहीं होंगे तब जन्म लेने का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। अतः ध्यान का महत्व बतलाना उचित ही कहा जा सकता है क्योंकि ध्यान द्वारा जो चित्त बनता है वह ध्यान की विशेषता से विलक्षण शक्ति वाला हो जाता है और कर्म संस्कार शून्य होना ही उसकी विलक्षणता है। इसी कारण वह कैवल्य का हेतु भी हो सकता है–

श्री बजरंगबली हनुमान जी को मुक्ति के प्रश्न करने पर भगवान् रामचन्द्र जी ने कहा है–

कैवल्य मुक्तिरेकैव,
पारमार्थिक रूपिणी।

अतः कैवल्य मुक्ति ही कठिन है सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य आदि मुक्तियां उसकी अपने सुलभ, सर्वसाधारण है। कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति के लिये भगवान के कहे हुए मुक्तिकोपनिषद् का अध्ययन करना चाहिए। इसी आधार पर शास्त्र विपरीत चलने से भगवान् राम का कथन है–

उच्छास्त्रं, शास्त्रिचेति
पौरूषं द्विविधं मतम्।
तत्रोच्छास्त्र मनर्थाय
परमार्थाय शामतीतम्।।

इनमें वासना ही कारण बतलाई गई है वह वासना दो प्रकार की होती है शुभ और अशुभ, कहा भी है।

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है–

उद्धरेदात्मनात्मानं,
नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु,
रात्मैव रिपुरात्मनः।।
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य,
येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे,
वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

इसलिए भगवान् ने गीता द्वारा कल्याण मार्ग का उपदेश दिये है जिससे सबका कल्याण हो–

न मां कर्माणि लिम्पन्ति
न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति
कर्मभिर्न स बध्यते।।
यस्य सर्वे समारम्भाः
कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं
तमाहुः पण्डितं बुधाः।।

इस प्रकार प्राणी कर्म बन्धन से छूट कर मुक्ति लाभ कर सकता है।

–: पंचकोश :–

अन्नमय– अन्न के कार्य रूप कोशों का समूह अन्नमय कोश कहा जाता है।

प्राणमय–अन्नमय कोश में जब प्राणादि चौदह वायु रहते हैं तब वह प्राणमय कोश कहलाता है।

मनोमय–जब इन दोनों कोशों से युक्त (होकर) आत्मा मन आदि चौदह इन्द्रियों से शब्दादि विषयों को और संकल्पादि धर्मों को ग्रहण करता है तब मनोमय कोश कहलाता है।

विज्ञानमय– जब ऊपर के तीन कोश युक्त उनमें रहने वाले भावों को जानता है तब विज्ञानमय कोश कहलाता है।

आनन्दमय–जैसे वट के बीज में वट वृक्ष रहता है ऐसे जब आत्मा इन चार कोशों से युक्त और स्वकारण के अज्ञान में अर्थात् अव्यक्तपने में होता है तब आनन्दमय कोश कहलाता है।

–उपनिषद्

वैराग्य

(स्वामी जी अनन्त श्री चिदानन्द जी सरस्वती महाराज)

न सुखं देवराजस्य,
न सखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुखं वीतरागस्य,
मुनेरेकान्तवासिनः।।

अर्थात् एकान्तवास में रहने वाले पूर्ण वैराग्यवान् ज्ञानी को जो सुख प्राप्त है, वैसा सुख देवताओं के राजा इन्द्र को भी नहीं होता; फिर भला इस पृथ्वी के ऊपर किसी सम्राट् को कहाँ से होगा। देवलोक के तथा भूलोक के सारे सुख अल्प तथा नाशवान् हैं और वैराग्यवान् ज्ञानी को तो स्वरूप का सुख होता है, इसलिए यह पूर्ण और अक्षय होता है।

स्वरूप की प्राप्ति के लिये वैराग्य अत्यन्त आवश्यक साधन है, अतएव इसका स्वरूप जानना चाहिए, जिससे इसको जीवन में उतारना सुकर हो जाय।

विगतः रागः यस्मात् स विरागः।
विरागस्य भावः वैराग्यम्।

राग अर्थात् आशक्ति जिसकी निवृत्ति हो गई है, वह विराग अथवा वीतराग है और विराग से भाववाचक संज्ञा होती है–वैराग्य। इसके द्वारा वैराग्य और त्याग दोनों का भेद समझ में आ जायेगा। त्याग की साधना में पदार्थों को छोड़ना पड़ता है और वैराग्य की साधना में पदार्थों में से आसक्ति दूर करनी पड़ती है। अर्थात् त्याग स्थूल क्रिया है–शारीरिक क्रिया है और वैराग्य मानसिक क्रिया है। यह बात समझाते हुए भगवान् ने गीता में कहा है–

विषया विनिवर्तन्ते,
निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य,
परं दृष्ट्वा निवर्तते।।

(गीता 2/59)

भाव यह है कि मनुष्य धीरे–धीरे विषयों का त्याग करता है और इससे उसकी इन्द्रियों को खुराक न मिलने पर वे शिथिल हो जाती हैं। फल यह होता है कि विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर उसमें भोग काल की अनुभवजन्य सूक्ष्म वासना रह जाती है। परन्तु परमानन्द रूप परब्रह्म का साक्षात्कार होने के बाद वैराग्य जाग्रत होता है और इससे विषय–सुख तुच्छ लगने लगते हैं तथा विषयों में रहने वाली सूक्ष्म वासना भी नष्ट हो जाती है।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि 'विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर उनमें सूक्ष्म वासना रह जाती है'– यह समझने की बात है। मधुर जिह्वास्वाद के लिये हम गुड़ खाते हैं। किसी मनुष्य ने किसी कारणवश गुड़ न खाने का नियम ले लिया और इससे गुड़ खाने का त्याग हो गया, परन्तु गुड़ की

मिठास का उसको अनुभव हो चुका है, उस अनुभव से उत्पन्न अभिलाषा या सूक्ष्म वासना उसके अन्तर में रह गई। इस कारण जब–जब उसकी दृष्टि गुड़ पर पड़ती है, तब–तब उसको खाने की इच्छा तथा उसका रस लेने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। प्रश्न यह होता है कि यह अभिलाषा नष्ट कब होती है ? उत्तर देते हैं कि जब आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुभव होता है, तब इस प्रकार के भवानन्द का विस्मरण अपने आप हो जाता है। इसके लिये फिर कोई यत्न नहीं करना पड़ता। इस बात को समझाते हुए शास्त्र कहता है–

लब्धत्रैलोक्यराज्यो ना,
भिक्षामाकांक्षते यथा।
एवं लब्धपरानन्दः,
क्षुद्रानन्दं न कांक्षति।।

भाव यह है कि त्रिलोकी का राज्य मिल जाने के बाद जैसे पुरुष भीख मांगने की इच्छा नहीं करता, उसी प्रकार निरतिशय आत्मानन्द का अनुभव करने वाला क्षणिक आनन्द की इच्छा नहीं करता।

अब वैराग्य का माहात्म्य देखिये, पतंजलि योग–सूत्र में लिखा है–

वीतरागविषयं वा चित्तम्।

चित्त–निरोध के अनुक उपायों को बतलाते हुए भगवान पतंजलि ने एक उपाय के रूप में इस सूत्र को प्रस्तुत किया है। भाव यह है कि श्रद्धेय वीतराग पुरुष का सतत् ध्यान करने से भी चित्त का निरोध होता है। वीतराग पुरुष का अर्थ है वैराग्यवान् पुरुष। जब वैराग्यवान् पुरुष के ध्यान से भी चित्त का निरोध हो जाता है, तब जो मनुष्य स्वयं वैराग्य धारण करता है, उसके लिये तो इसे सहज साध्य समझना चाहिए। इसी से–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

यह सूत्र दिया गया है और वैराग्य को चित्त निरोध का प्रत्यक्ष साधन बतलाया गया है।

हम पहले देख चुके हैं कि आत्म–साक्षात्कार होने के बाद ही परम वैराग्य की दशा उत्पन्न होती है। इस बात को लक्ष्य में रखकर वैराग्य का एक दूसरे ही प्रकार से अर्थ किया गया है, जो इस प्रकार है–

न विरक्ता धनैस्त्यक्ता,
न विरक्ता दिगम्बराः।
विशेषरक्ताः स्वपदे ते,
विरक्ता मता मम।।

भाव यह है कि जो घर–धन आदि तथा स्त्री–पुत्रादि को त्याग कर वन में जाते हैं, वे सच्चे विरक्त या वैराग्यवान् नहीं हैं, तथा जिसने लंगोटी तक को त्याग दिया है इस प्रकार का दिगम्बर अर्थात् दिशारूपी वस्त्र धारण करने वाला अवधूत भी सच्चा विरक्त नहीं। मेरे विचार से परम वैराग्य को धारण करने वाला वही पुरुष हो, जो अपने स्वरूप में विशेष रूप से रागयुक्त है, अर्थात् जिसकी स्वरूप में स्थिति है या जिसे स्वरूप की प्राप्ति की उत्कृट इच्छा के सिवाय दूसरी कोई इच्छा ही

...वही परम त्यागी या परम विरक्त है।

अब दूसरे प्रकार से देखिये– पहले हम राग की निवृत्ति रूपवैराग्य को बतलाया, उसे साधन रूप वैराग्य कह सकते हैं और फिर इच्छामात्र के त्याग के द्वारा स्वरूप प्राप्ति की तीव्र इच्छारूपी वैराग्य को कहा, वह साध्यरूप वैराग्य कहलाता है, क्योंकि यहाँ वैराग्य की आवश्यकता केवल स्वरूप की प्राप्ति के लिये ही होती है। साधनरूप वैराग्य पहले प्राप्त करना चाहिए। जीव अनेक जन्मों से विभिन्न प्रकार की शक्तियां धारण करता चला आ रहा है। प्रत्येक शरीर में वह अपनी इन्द्रियों से विषयों का सेवन करता रहा है और इससे विषयों में इसकी दृढ़ आसक्ति बँध गई है। केवल पदार्थों को छोड़ देने से उनमें रहने वाले राग का नाश नहीं होता। यह श्लोक इसी बात को कहता है–

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणो,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्माणि यः प्रवर्तते,
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।।

रागी यदि गृहस्थाश्रम का त्याग करके जंगल में जाय तो वहाँ भी यदि वह राग का त्याग न करे तो उसके आचरण में दोष आ जाते हैं और एक दूसरा आदमी जिसने राग का त्याग कर दिया है तथा पाँचों इन्द्रियों को संयम में रखकर गृहस्थाश्रम में रहता है, वह तपस्वी ही है, क्योंकि ऐसा करने से उसका जीवन सदाचारमय रहता है। तात्पर्य यह है कि जिसने विषयों में से राग अर्थात् आसक्ति को निवृत्त कर दिया है, उसका घर ही तपोवन बन जाता है। वीतरागी पुरुष के लिये घर छोड़कर जंगल में जाना कोई अर्थ नहीं रखता। (राग की निवृत्ति की साधना के लिये एकान्तवास की बहुत ही आवश्यकता है, यह बात भूलने योग्य नहीं है।)

अब यह देखना है कि राग का त्याग कैसे किया जाय। साधरणतया मनुष्य का खाने–पीने तथा पहनने–ओढ़ने के पदार्थों में राग होता है। यह राग विवेक से छूटता है। मनुष्य विवेक के द्वारा विचार करें कि संसार के भोग–पदार्थ नाशवान् हैं और भोग काल में सुख की भ्रान्ति कराकर दु ख की स्थिति में ही ढकेल देने वाले हैं। शरीर है, अतः उसके निर्वाह के लिये खान–पान आवश्यक है। परन्तु खान–पान के लिये जीवन आवश्यक नहीं है। अतः खान–पान के पदार्थों में मोह नहीं रखना चाहिए। औषधि जैसे आवश्यकता पड़ने पर ही ली जाती है उसका कोई शौक नहीं करता, उसी प्रकार खान–पान शरीर को बनाये रखने के लिये ही है। इसी प्रकार शीत और घाम से बचाव करने मात्र के लिये पहनने और ओढ़ने के वस्त्र की आवश्यकता है। उसके श्रृंगार करके रूपवान दिखलाने की कोई उपयोगिता नहीं है। इस प्रकार निरन्तर विचार करते रहने से भोगासक्ति अवश्य शिथिल पड़ जाती है। अनेक जन्मों का भोग का अभ्यास है, अतएव इसे दूर करने के लिये इस दूर करने के अभ्यास को भी दीर्घकाल तक दृढ़तापूर्वक करते रहना चाहिए।

विषयों से इस प्रकार राग की निवृत्ति करके फिर शरीर में से राग की निवृत्ति करनी चाहिए। शरीर के साथ जीव का अनादिकाल से परिचय है और शरीर के द्वारा ही जीव अनेकों भोगों को भोगता आ रहा है तथा इसी कारण शरीर को अपना स्वरूप मान बैठा है। अतएव शरीर में से

राग की निवृत्ति करने के विचार का आश्रय लेना चाहिए। मैं प्रतिदिन वस्त्र धारण करता हूँ और प्रतिदिन उसे उतारता हूँ– तथा मैला होने पर उसे बदलता देता हूँ और फट जाने पर उसे फेंककर दूसरा सिलवाता हूँ। तथापि मैं मानता हूँ कि मैं कपड़े से अलग हूँ तथा उसका उपयोग शरीर को ढँकने भर के लिये है। इसी प्रकार मैं शरीर से पृथक हूँ; क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि जवानी में शरीर जैसा सशक्त था वैसा अब वृद्धावस्था में नहीं है। अर्थात् शरीर की अवस्था बदलती है, पर मैं अपने मूल स्वरुप में ही रहता हूँ। जैसे कपड़े बदलने पर मेरे शरीर में कोई अन्तर नहीं पड़ता, उसी प्रकार शरीर हो या बड़ा, जवान हो या बूढ़ा, सशक्त हो या अशक्त– मुझमें कोई फेर–फार नहीं होता। जैसे रहने के लिये घर होता है उसी प्रकार जीव को कर्मफल भुगतने के लिये शरीर एक धर्मशाला रूप ही है। इसी कारण शरीर का एक नाम "भोगायतन" अर्थात् भोग भोगने का स्थान है। फिर मैं बहुधा अनुभव करता हूँ कि अमुक विषय को मेरा मन नहीं मानता, अथवा मेरी बुद्धि निश्चय नहीं कर पाती। इससे यह निश्चय होता है कि मैं मन–बुद्धि से पृथक हूँ। इसी प्रकार के निरन्तर अभ्यास से शरीर में से राग निवृत्त हो जाता है। शरीर में से आसक्ति छूट जाने पर केवल शरीर के साथ ही सम्बन्ध रखने वाले स्त्री–पुत्रादि तथा घर–धन आदि में से आसक्ति छोड़ते कुछ देर नहीं लगती।

सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति।

अर्थात् जब तक शरीर है, तभी तक प्राणी पदार्थों के साथ सम्बन्ध है, आँखें मुँद जाने अर्थात शरीर की मृत्यु हो जाने पर तो यह सम्बन्ध अपने आप छूट जाता है। अतएव जीते जी क्यों न उस सम्बन्ध को छोड़ दिया जाय, जिससे निश्चिन्तता प्राप्त हो।

इस प्रकार राग मात्र की निवृत्ति होने पर साध्यरूप वैराग्य जाग्रत होता है और उससे अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अत्यन्त तीव्र इच्छा जाग्रत हो जाती है। तथा साधक श्रोतीय और ब्रह्मनिष्ठ गुरू की शरण ढूँढ़ता है। ऐसे समय में गुरू श्रोतीय न हो तो भी काम चल सकता है, परन्तु ब्रह्मनिष्ठ तो होना ही चाहिए, क्योंकि जिसने स्वरूप का अनुभव नहीं किया, वह दूसरे को स्वरूप–ज्ञान कहाँ से करा सकता है। गुरू की शरण में जाने पर अधिकार देखकर गुरू कहते हैं–'तत्त्वमसि'। अर्थात् जिसको तू ढूँढ़ता है, वह तू खुद ही है। हे भाई ! जो ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त हो रहा है,, वही तू है। इस प्रकार क्षणमात्र में ही तीव्र इच्छा वाला वैराग्यवान् अधिकारी मुमुक्षु आत्म–दर्शन कर लेता है। कहते हैं कि पलक के बन्द होकर खुल जाने में जितनी देर लगती है, आत्म–दर्शन होने में उतनी देर भी नहीं लगती। अथवा एक फूल को तोड़ने में जितनी देर लगती है, उतनी देर भी स्वरूप साक्षात्कार होने में नहीं लगती। देर लगती है केवल साधन–सम्पन्न अधिकारी होने में ही। अधिकारी होने के बाद तो तुरन्त ही स्वरूप–दर्शन हो जाता है।

।। ॐ श्री रामलालप्रभवे नमः।।

प्रेषक– कृष्ण कुमार पाण्डेय
गोरखपुर

गौ की महिमा

पृथ्वी लोक में गौ समस्त प्राणियों के कल्याण का कारण मानी गयी है। गौ के दूध, दही, घी को तो अमृत माना गया है। इसके अतिरिक्त उसका मूत्र और गोबर भी कल्याण कारक होता ही है। किसी भी पूजा पाठ पञ्चजन्य का जो विधान है। वह मात्र गाय का दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर को मिलाकर बनाया जाता है। जो औषधीय गुणों से युक्त होता है। शास्त्रों में तो प्रतिदिन पञ्चजन्य लेने का विधान है। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता है। लेकिन धार्मिक अनुष्ठानों पर तो इसका प्रयोग आवश्यक हो जाता है। हमारे संतो ने गौ के बारे में बड़ी बारीकी से लाभ बताया है। उनका कहना है कि यदि शुद्ध देशी गाय के घृत से हवन किया जाये तो वातावरण का प्रदूषण अपने स्वभाविक स्तर पर बना रहेगा। ऐसा प्रयोग संतो ने वैज्ञानिकों से करवाकर दिखाया है। जो वैज्ञानिको को प्रभावित किया। उन्हे आश्चर्य भी हुआ। गौ की महिमा को प्रत्यक्ष देखा।

पद्म पुराण से गौ महिमा का ऐसा ही प्रसंग जो साधको को गौ महिमा से जुड़ने हेतु प्रेरित करेगी। इसीलिए संत महात्माओं के आश्रम पर गौशाला अवश्य होती है। एक बार संतो की सभा चल रही थी जिसमें ऋषि नारद ब्रह्मा के साथ में ऋषिगणों और संतों के साथ सत्संग चल रहा था। नारद जी ने ब्रह्मा जी से गौ के बारे में विभिन्न प्रकार के प्रश्न किये। जिसका उत्तर देते हुए ब्रह्मा जी ने कहा– बेटा भगवान के मुख से एक महान तेजोमय अंश प्रकट हुआ। उस तेज से सर्व–प्रमुख वेद, अग्नि गौ और ब्राह्मण सब अलग–अलग प्रकट हुए। पुनः वेद के चार भाग मैंने किया। इसमें अग्नि और ब्राह्मण देवताओं के लिये हविष्य ग्रहण करते हैं। हविष्य गौ के घृत से उत्पन्न होता है। इसलिये अग्नि, गौ, और ब्राह्मण इस जगत के जन्मदाता माने गये हैं। ये चारों ही जगत को धारण करतें है सभी प्राणियों को गौ की पूजा करनी चाहिए। राक्षस के लिये भी गौ पूज्य है। गौ में सम्पूर्ण देवताओं का वास होता है। इसलिए सबके पोषण के लिए मैंने प्राचीन काल से ही गौ की सृष्टि की है। गौ के पञ्चजन्य तो शरीर के समस्त पापों को नष्ट कर देता है। इसलिए व्यक्ति को प्रत्येक दिन गौ के दूध, दही और घी का अवश्य सेवन करना चाहिए। जिनको गाय के इन पदार्थों के सेवन का अवसर नही मिलता उसका शरीर तो मल के समान माना गया है। शरीर में अन्न पाँच रात्रि तक, दूध सात रात्रि, दही बीस रात्रि और घृत एक मास तक अपना प्रभाव रखता है। इसलिए प्रत्येक युग में गौ ही सब कार्यों के लिए अच्छी मानी गयी है, जीवों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली है। गौ की प्रदक्षिणा करके नित्य यदि प्रणाम किया जाये तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं। लेकिन उस गौ में माता का स्वरुप को देखकर श्रद्धाभाव से यह कार्य होना चाहिए। क्योकि श्रद्धा सभी कार्यों के मूल भाव में विद्यमान है। गौ का दूध और घी नदियों जैसा है, दूध में घी की भवरें उठा करती है। इसलिए प्रत्येक गृहस्थ को चाहिए कि वे गौ का पालन अवश्य करें।

मनुष्य को यह विचार रखना चाहिए कि हमारे घर गौ हो। वे हमारे चारों ओर घेर कर रहें। भगवान कृष्ण का अधिकांश समय गौ के बीच व्यतीत होता था।

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एवच।
गावश्च सर्वगात्रेषु गवां मध्येवसाम्यम्।।

(पद्म पुराण)

सद्गुरुदेव भगवान योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज भी गौ की महत्ता के बारे में उपदेश देते थे। उनका कथन था कि– **"लल्ला जिस घर में गौ का पालन होता है उसके शरीर को स्पर्श करने से विभिन्न बाधाऐं स्वतः समाप्त हो जाती है।"** गाय यदि पालक के शरीर को चाहती है तो वह परम कल्याण का भागी बन जाता है। आज इसलिए हर आश्रमों में गौ पालन बड़े श्रद्धा के साथ होता है। गौ आज के जीवन में रोजगार का आश्रय बन गयी हैं। गौ के मुख में छहो अंगो, पदो और क्रमोंसहित सम्पूर्ण वेद निवास करते है। सीगों में भगवान भांकर और विष्णु विराजते है। कानों में अश्विनी कुमार, नेत्रों में चन्द्रमा और सूर्य, दाँतों में गरुण, जिह्वा में सरस्वती, अपान में सम्पूर्ण तीर्थ, मूत्र स्थान में गंगा, रोमकूपों में ऋषि, मुख और पृष्ठ भाग में यमराज, दक्षिण पार्श्व में गरुण और कुबेर, वाम पार्श्व में तेजस्वी और महावक्ती यक्ष, मुख के भीतर गन्धर्व, नासिका के अग्रभाग में सर्प, खुरों के पिछले भाग में अप्सराऐं, गोबर में लक्ष्मी, गौमूत्र में पार्वती, चरणों के अग्रभाग में आकाशचारी देवता, रँभाने की आवाज में प्रजापति तथा थनों में चारों समुद्र निवास करते है। गौ के खुर उठी धूल को सिर पर धारण करने से तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होता है। सब पापों से जीव मुक्त हो जाता है। ऐसी महिमा से मण्डित गौ का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार गाय व्यक्ति के तीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण है। महात्माओं ने तो गाय की महिमा का बखान अपने उपदेशों में करके लोक कल्याणकारी बताया है। असक्त गृहस्थ जीवन में गौ पारिवारिक जीवन का अंग माना गया है।

वेदों एवं उपनिषदों में योगचर्या

(श्री केशव उपाध्याय, अवर–अभियन्ता)

मानव मन में चाहे जिस भी प्रक्रिया द्वारा जब एकाग्रता धर्म का उदय होने लगता है तो मन शक्तिपुंज एवं एकादेशीय होकर जिस वस्तु को ग्रहण करता है उसमें उसके स्थूल रूप से लेकर उसके सूक्ष्म जगत में घटने वाली सारी घटनाओं का साक्षात्कार कर लेता है। चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध समाधि की पराकाष्ठा का ही द्योतक है। अतः प्राचीन ऋषि–मुनियों ने वैदिक ऋचाओं का साक्षात्कार योग–विधि की लयता से सम्भावित है। वेदों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल मे शरीर की संरचना के दृष्टिकोण से प्राण–जयता द्वारा योग की प्राप्ति अत्यधिक सहज रही होगी। ऐतरेआरण्यक के प्राण विद्या विषयक अध्यायों में ऋग्वेद के कई मन्त्र उद्धृत किये गये हैं। वहाँ प्राण को समस्त विश्व में व्याप्त बताया गया है। दीर्घतम ऋषि निम्न मत्र के द्रष्टा हैं और वे कहते हैं कि मैंने प्राण का साक्षात्कार किया है। वह मन्त्र इस प्रकार से है–

अपश्यं गोपामनिपद्यमान,
मा च परा च मथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान,
आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः।।

अर्थात् यह प्राण सब इन्द्रियों का रक्ष है, यह कभी न ष्ट नहीं होने वाला है, यह भिन्न–भिन्न नाड़ियों द्वारा आता है और जाता है। मुख और नासिका द्वारा प्रतिफल शरीर में आना–जाना लगा हुआ है। यह प्राण शरीर अध्यात्म रूप से वायु रूप मे है, परन्तु अधिदैव रूप मे सूर्य है। आगे प्राण अमृतरूप है, इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिये ऋग्वेद में यह मन्त्र दिया गया है–

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो–
ऽमर्त्यो मर्त्येया सयोनिः।
सा शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता,
न्यन्यं चिक्युर्न निचिक्यूरन्यम्।।

फिर आगे चलकर प्राण की ध्यानविधि प्राण के गुणों का साकार वर्णन करते हुए किया गया है। प्राण ही ऋषि रूप है। ऋग्वेदों के मन्त्रों के द्रष्टा अनेक ऋषि कहे गये हैं। इन सब ऋषियों की भावना प्राण मे करनी चाहिए क्योंकि प्राण ही मन्त्र द्रष्टा ऋषियो के आकार में व्याप्त है।

वेदों के पश्चात् उपनिषदों में योग–साधना का स्वरूप विस्तृत, स्पष्ट एवं भेद–प्रभेद से सविस्तार किया गया है। उपनिषदों में सर्वत्र योग का निर्देश है, परन्तु कुछ उपनिषद् योगचर्या प्रधान ही हैं। इन उपनिषदों का नाम क्रमशः निम्न प्रकार है–

अद्वयतारकोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, बिन्दूपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, महावाक्योपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद्,

योगतत्त्वोपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, वराहोपनिषद्, शाडिल्यापनिषद्, हंसोपनिषद्, योगराजोपनिषद्।

बहुतायत से इन सभी ग्रन्थों में षडंगयोग, अष्टांगयोग, नादयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कुण्डलिनी योग इत्यादि–इत्यादि का सविस्तार वर्णन किया गया है। इन उपनिषदों के अवलोकर से मूलतः यम, नियम, आसन एवं प्राणायाम के प्रकार–भेद भिन्न–भिन्न रूप से वर्णित किये गये हैं। अमृतनादीपोपनिषद् में प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि षडंगयोग माना गया है। तर्क का लक्षण यह है–

आगमस्या विरोधेन ऊहां कर्तं उच्यते।

अर्थात् आगम से अविरुद्ध अनुमान तर्क कहा जाता है। अमृतनादीपोपनिषद् में मन को ही निर्विषय बनाने का ही नाम मोक्ष बताया गया है। क्षुरिकोपनिषद् में षडंगयोग का ही वर्णन है, परन्तु इसमें आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि संक्षेप से कहे गये हैं। तेबिन्दुपनिषद् में योग के पन्द्रह अंग बतलाये गये हैं। ये अंग–

यमो हि नियमस्त्यागो,
मौनं देशश्चकालतः।
आसनं मूलबन्धश्च देह–
साम्यं च दृक्स्थितिः।।
प्राणसंयमनं चैव
प्रत्याहारश्च धारणा।
आत्थ्यानं समाधिश्च,
प्रोक्तान्यंगानि वै क्रमात्।।

अर्थात् यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूबन्ध, देहसाम्य, दृक्स्थिति, प्राण–संयमन, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान और समाधि ये अंग क्रम से बताये हैं। इनमें वेदान्त प्रतिपाद्यतत् एवं त्वम् पदार्थ के अभेद का निरूपण किया गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योग दो प्रकार का– कर्मयोग तथा ज्ञानयोग वर्णित किया गया है। वर्णित कर्मों में इस बुद्धि का होना कि यह कर्त्तव्य कर्म है। मन का ऐसा नित्य–बन्धन तथा श्रेय अर्थों में चित्त का सदा बद्ध रहना ज्ञानयोग बताया गया है। इसके अनन्तर अष्टांगयोग का वर्णन किया गया है। यहाँ बताया गया है कि अष्टांगयोग भगवान् पतंजलि के निर्देशित अष्टांगयोग से मिलता जुलता ही है। कैवल्य स्थिति की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि–

अहमेव परब्रह्म
ब्रह्माहमिति संस्थितिः।
समाधिः स तु विज्ञेयः,
सर्ववृत्ति विवर्जितः।।
सुषुप्तिवद् यश्चरति,
स्वभावपरिनिश्चलः।
निर्वाणपदमाश्रित्य,
योग कैवल्यमश्नुते।

अर्थात् मैं ही परब्रह्म हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, ऐसी सम्यक् स्थिति समाधि जानो। उसमें और कोई भी वृत्ति नहीं होती तथा ऐसी अवस्था का व्यक्ति सोया हुआ सा चलता है, स्वभाव से ही जो सर्वत्र निश्चल है ऐसा योगी निर्वाण पद का आश्रय कर कैवल्य प्राप्त करता है। दर्शनोपनिषद् में भगवान दत्तात्रेय ने अष्टांग योग का विधिपूर्वक निर्देश अपने एक शिष्य को किया है। ध्यानबिन्दुपनिषद् में षडंगयोग की साधना द्वारा नादानुसंधान की प्रक्रिया से आत्मोपलब्धि बतलायी गयी है। नादबिन्दोपनिषद् में प्रणवोपासना तथा नादानुसंधान का ही वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् पाशुपतिब्रह्मोपनिषद् एवं ब्रह्मविद्योपनिषद् में ज्ञान योग एवं नादयोग का वर्णन मिलता है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद में टष्अङ्ग।ग योग तथा तारकयोग का वर्णन किया गया है। महावाक्योपनिषद में हंस–विद्या का वर्णन किया गया है–

विद्या हि काण्डान्तरादित्यो ज्योतिर्मण्डल ग्राह्यं नापरम्। असावादित्यो ब्रह्मेत्यजपयोपहित्ं हंसः सोऽहम्। प्राणापानाभ्यां प्रतिलामानेलोमाभ्यां समुपलभ्यैवं सा चिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि ब्रह्मण्यभिध्यायमानं सच्चिदानन्दः परमात्माविर्भवति।

'काण्डान्तर में जो ज्योतिर्मण्डल स्वरूप आदित्य है वही विद्या है', अन्य कोई नहीं। 'असौ आदित्यब्रह्म' यही आदित्य ब्रह्म है, जिसका 'हंसः सोऽहम्' इस अजपा मन्त्र से निर्देश किया जाता है। प्राणापान की अनुलोम और प्रतिलोम की गति से वह विद्या जानी जाती है। दीर्घकाल के अभ्यास से वह विद्या लाभकर जब त्रिवृत् आत्मा ब्रह्म का ध्यान किया जाता है तब सच्चिदानन्द परमात्मा आविर्भूत होते हैं।'

योगकुण्डल्युपनिषद में कुण्डलिनी योग एवं खेचरी इत्यादि की मुद्राओं की बात कही गई है। योग–चूड़ामण्डुपनिषद् में अष्टांगयोग का ही वर्णन किया गया है। योगतत्त्वोपनिषद में मन्त्र योग, हठयोग एवं राजयोग का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध अष्टांगयोग का ही सविस्तार वर्णन किया गया है। योग शिखोपनिषद में योग तत्त्वोपनिषद में कहे गये विषयों का सविस्तार यहाँ वर्णन किया गया है। कुछ बातें उससे भिन्न भी हैं तथा मन्त्रयोग, हठयोग एवं राजयोग का स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया गया है। इन्हें यथा क्रम चार भूमिकाओं का स्वरूप प्रदान किया गया है जिन्हें मिलाकर महोयोग के नाम से जाना जाता है देखें–

मन्त्रोलयो हठो राज–
योगान्ता भूमिकाः क्रमात्।
एक एव चतुर्धाऽयं,
महायोगोऽभिधीयते।।

बराहोपनिषद में लय, मन्त्र तथा हठ योग का वर्णन किया गया है। शांडिल्योपनिषद् में अष्टांगयोगसंक्षेप में वर्णित किया गया है। हंसोपनिषद् में संक्षेप से नादानुसंधान, अजपाजप एवं हंस विद्या का वर्णन किया गया है। योगराजोपनिषद् ऊपर के बीसों उपनिषदों का सारांश है।

इस प्रकार से वेदों एवं उपनिषदों में महाविद्या योग का सविस्तार वर्णन मिलता है। वैदिक ग्रन्थ प्राणविद्या को सबसे ऊँचा स्थान देते हैं। योग में प्राणों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्राणायाम से ही सम्बन्धित है। सभी उपनिषद् मोक्ष के दो ही उपाय बताते हैं मोजय एवं प्राणजय। मनोजय वासनाओं

के क्षीण होने से होता है किन्तु प्राणायाम द्वारा प्राणजय से मनोलयता स्वयं सिद्ध हो जाती है। इसीलिए योग में प्राणायाम का इतना महत्व है। कठोपनिषद् में कहा गया है–

उर्ध्व प्राणमुन्नय–

त्यपानं प्रत्यगस्यति।

मध्ये बामनमासीनं

विश्वे देवा उपासते।।

अर्थात् जो प्राण को ऊपर भेजता है और अपान को नीचे फेंकता है उस मध्य में रहने वाले वामन को विश्वे देव भजते हैं।

इस प्रकार से शाश्वत अनादि काल में हुई वेदों की रचना में एवं उपनिषदों योग की परम महत्त स्पष्ट दृष्टिगोचर हो उठती है। योग मानव मन का गहनतम विज्ञान वहीं है एक तरफ, वहीं समाधि स्वरूप में यह स्वयं ब्रह्मतत्व एवं आत्मतत्व का द्योतक है। इसके ही माध्यम से युग–युग में मानव समाज को मानसिक विकास का श्रेय प्राप्त होता रहा है।

।। श्री रामलालप्रभवे नमः।।

आश्रम के आगामी कार्यक्रम

श्री गुरुपूर्णिमा व्यास पूजा का पावन महोत्सव श्री सिद्धगुफा सवांईधाम में 21 जुलाई 2024 को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। सभी गुरुभक्त धाम के दर्शन को आते ही हैं।

23 जुलाई 2024 ये श्री रुद्र महायज्ञ का आयोजन शुरू हो जायेगा जो 11 दिन तक चलेगा। 02 अगस्त 2024 को इसकी पूर्णाहुति होगी। सभी अपनी सुविध ानुसार यज्ञ में शामिल हो सकते हैं। अतः सभी आयें और अनुष्ठान में बैठकर अध्यात्म लाभ प्राप्त करें।

।। जय गुरुदेव जी की।।

व्यवस्थापक
श्री सिद्धगुफा सवांईधाम,
एत्मादपुर, आगरा–283202

समय की ज्वलंत आवश्यकता

''हममें से कुछ लोग इस सांसारिक प्रपंच से अलग रहें और केवल परमात्मा के लिये जीवित रहें। संसार के लिये धर्म की रक्षा करें। यदि वैराग्य धारण करो तो दृढ़तापूर्वक डटे रहो। और बढ़ते जाओ। चिंता नहीं कौन गिरता है ! सत्य संकल्प के पीछे भगवालन स्वयं विद्यमान हैं। जो गिरे वह पताका को दूसरे हाथों में सौंप दे और तक वह कभी नहीं गिर सकेगी। जीवन की क्षुद्र मर्यादाओं में बं। वे बेचारे गृहस्थ कर ही कितना सकते है ! यह सन्यासियों का कार्य है, शिव के गणों का कार्य है कि आकाश को ' हर! हर! ' के निनाद से गुंजायमान कर दें।

मेरी समस्त भावी आशा उन युवकों में केन्द्रित है— जो चरित्रवान हों, बुद्धिमान हों, लोकसेवा के हेतु सर्वस्व त्यागी और आज्ञापालक हों, जो मेरे विचारों को क्रियान्वित करने के लिये और इस प्रकार अपने तथा देश के व्यापक कल्याण के हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकें। यदि मुझे नचिकेता की श्रद्धा के सम्पन्न केवल दस या बारह युवक मिल जायें तो मैं इस देश के विचारों और कार्यो का एक नयी दिशा में मोड़ सकता हूँ।

जिनमें मुझे कुछ अधिक क्षमतायें दीख पड़ती है उनमें से कुछ विवाह के बन्धन में बन्ध गये है। कुछ ने स्वयं को नाम प्रतिष्ठा या धन कमाने के लिये बेच डाला है और कुछ शरीर से दुर्बल हैं। शेष, जिनकी संख्या अधिक है, किसी उच्च भाव को ग्रहण करने में ही समर्थ नहीं है।

मैं चाहता हूँ— लौह पेशियाँ और इस्पात के स्नायु जिनके भीतर उसी धातु का बना मानस रहता है, जिनका वज बनाया जाता है। शक्ति, पौरूष, क्षात्रवीर्य, ब्रह्मतेज। हमारे सुन्दर होनहार युवकों के पास से सब चीजें हैं—यदि केवल उन्हें उस क्रूरता की वेदी पर— जिसे वे विवाह करते है—बलि न किया जाय। हे भगवान मेरी पुकार सुनो— कुछ को इस विवाह से बचा रहने दो। उन्हें केवल ईश्वर के लिये जीने दो, ताकि वे दुनियाँ के लिये धर्म की रक्षा कर सकें। निस्सन्देह क्योंकि ईश्वरीय इच्छा से दन्हीं लड़कों में से कुछ समय बाद आध्यात्मिकता और कर्म—शक्ति के महान् पुँज उदित होंगे जो भविष्य में मेरे विचारों को क्रियान्वित करेंगे।''

—स्वामी विवेकानन्द

SIDDHYOG Postal Regd. No.: OAG - 19/24-26 JUN 2024

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□

कर्मणा मनसा वाचा सद्भिराराध्यो गुरुः
दीर्घदण्डो नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ

सच्चे भाव से, कर्म से, मन से और वाणी से गुरुदेव की आराधना करें।
लज्जा रहित होकर गुरुदेव के समीप लम्बे दण्ड के समान पृथ्वी पर लेटकर नमस्कार करें।

प्रकाशक:- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिये जयराम ऑफसेट एण्ड ग्राफिक्स, टूण्डला, फिरोजाबाद, से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सरौंई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं0 UPHIN/2004/14566 सम्पादक: आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा